भारत एवं राजस्थान सरकार द्वारा विज्ञापनों के लिए मान्यता प्राप्त

आरएनआई पंजीयन RAJHIN/2016/72902
डाक पंजीयन RJ/ UD/ 29-150/ 2023-2025

शब्द रंजन

संस्थापक एवं संरक्षक डॉ. महेन्द्र भानावत

विचार एवं जनसंवाद का पाक्षिक

वर्ष 8 | अंक 19 | उदयपुर सोमवार 02 अक्टूबर 2023 | पेज 8 | मूल्य 5 रू.

ध्यान क्यों, कब, कैसे और किसलिए किया जाय ?

- आचार्य महाप्रज्ञ -

चेतना के दो स्तर हैं-इंद्रिय चेतना और अतींद्रिय चेतना। हम लोग इंद्रिय चेतना के स्तर पर ज्यादा जीते हैं। इंद्रिय चेतना को समझने के लिए थोड़ा विश्लेषण जरूरी है। हमारी पांच इंद्रियां हैं- स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र। बाहरी जगत से सारा सम्पर्क इन इंद्रियों के माध्यम से होता है। हमारा बाहर का जगत स्पर्शमय है, रसमय है, गंधमय है, शब्दमय है और रंग-रूपमय है। पांच बाह्य जगत के विषय और पांच हमारी इंद्रियां। इंद्रियां ज्ञानात्मक हैं, विषयों को जानती हैं और बाह्य जगत के साथ हमारा सम्पर्क स्थापित होता है।

एक छट्ठी इंद्रिय है और वह है मन। इंद्रियां मात्र वर्तमान को जानती हैं। मन त्रैकालिक है। वह अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों को जानता है। इंद्रियों का ज्ञान मात्र वर्तमानकालिक है। हमारे जीवन-व्यवहार की सीमा है इंद्रिय चेतना ।

प्रेक्षाध्यान का अर्थ है-इंद्रिय चेतना का सम्यक् नियोजन। हम देखते हैं, सुनते हैं, चखते हैं, यह इंद्रिय चेतना का नियोजन होता है। इसके दो प्रकार बन जाते हैं। एक प्रकार है राग-द्वेष से प्रभावित होकर देखना, राग-द्वेष से प्रभावित होकर सुनना, राग- द्वेष से प्रभावित होकर खाना, चखना, स्वाद लेना। यह इंद्रिय चेतना का नियोजन सामान्य दुनिया में चलता है। इसमें कोई विशेष बात नहीं है। मनुष्य ही नहीं, दूसरे प्राणी भी राग-द्वेष से प्रभावित होकर इंद्रिय चेतना का नियोजन करते हैं। देखने की कला का विकास होता है तो मनुष्य केवल देखता है। राग-द्वेष से युक्त होकर नहीं देखता, केवल देखता है। केवल शब्द का प्रयोग सम्यक् नियोजन को सुचित करता है। जहां केवल लगा कि मैं केवल देखता हूं, केवल सुनता हूं, केवल चखता हूं, इसका तात्पर्य है कि इंद्रिय चेतना का नियोजन। उसका स्वरूप है ज्ञानात्मक। सामान्यतया मनुष्य ज्ञानात्मक सम्यक् चेतना का प्रयोग जानने के लिए नहीं करता किंतु राग और द्वेष के लिए करता है। जब किसी को देखा, राग जुड़ा और प्रियता का भाव पैदा हो गया। किसी व्यक्ति को देखा, द्वेष उसके साथ जुड़ा और अप्रियता का भाव पैदा हो गया।

प्रियता और अप्रियता- इन दो शब्दों में सारे संसार की व्याख्या निहित है। हमारा सारा व्यवहार प्रियता और अप्रियता के साथ चल रहा है। या तो हम प्रियता के साथ देखते हैं या अप्रियता के साथ। इसलिए एक तीसरे नेत्र की अपेक्षा सामने आई। तीसरा नेत्र खुलना चाहिए। तीसरा नेत्र है समता का नेत्र। प्रेक्षा का अर्थ है समता की चेतना का विकास, समता के नेत्र का खुल जाना। जब समता का नेत्र खुल गया तब हम देखेंगे, केवल देखेंगे। यथार्थ का बोध करेंगे, जानेंगे। उसके साथ न प्रियता का भाव होगा, न अप्रियता का भाव। यह है हमारा इंद्रिय चेतना का सम्यक् नियोजन।

मन का स्वभाव है चंचलता। हम उसको अन्यथा न मानें, वह उसकी प्रकृति है। क्योंकि वह प्रवृत्यात्मक है, योग है इसलिए चंचलता उसका सहज स्वभाव है। उसका भी सम्यक् नियोजन करना सीखें। एक साथ अनेक विचार आते हैं। एक विचार के बाद दूसरा विचार आता रहता है। विचार परिस्थिति के साथ उपजता है और भीतर से भी, हमारी भावधारा से भी उपजता है। मन की चंचलता के दो स्रोत हैं। चंचलता भीतर से भी आती है और बाहर से भी आती है ।

ध्यान का अर्थ है चंचलता को कम करना। जब मन किसी एक आलंबन पर टिक जाता है, उस अवस्था का नाम है एकाग्र अवस्था। ध्यान का प्रारंभिक अर्थ है एक आलंबन पर मन को टिकाने का अभ्यास। जब एक आलंबन पर टिक गया, हमने जो आलंबन लिया, उसी पर मन टिका रहे तो हमारी एकाग्रता सध गई और चंचलता कम हो गई।

चंचलता को कम करना आवश्यक है। जितनी समस्या पैदा हो रही है, उसके मूल में चंचलता का बहुत बड़ा भाग है। एक छोटी-सी समस्या है और चंचलता अधिक है तो राई जितनी समस्या पहाड़ जितनी बन जाएगी। एक बड़ी समस्या है और हमारी चंचलता कम है तो पहाड़ जितनी समस्या राई जितनी बन जाएगी। समस्या छोटी है या बड़ी, उसकी हम निरपेक्ष व्याख्या नहीं कर सकते। समस्या छोटी है या बड़ी, इसका निर्णय स्वयं करो। यदि तुम्हारी चंचलता कम है तो समस्या छोटी है और यदि तुम्हारी चंचलता अधिक है तो समस्या बड़ी है।

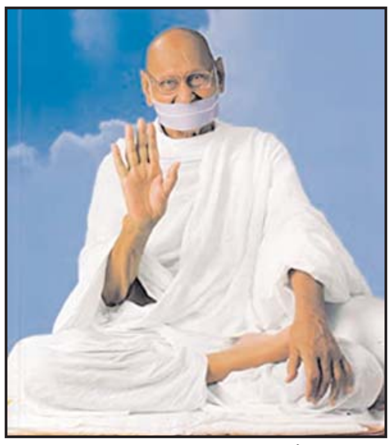

इंद्रियां अपने विषय पर जा रही हैं, वहां से हटाकर इंद्रियों को भीतर ले जाओ, बाहर काम मत करने दो। यह प्रतिसंलीनता होती है तो चंचलता अपने आप कम हो जाती है। इंद्रियां जब-जब बाहर जाती हैं, दृश्य को देखती हैं या अपने विषय के साथ संपर्क स्थापित करती हैं और मन चंचल हो जाता है। मन इंद्रियों के साथ काम करता है। मन बाह्य जगत के साथ सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकता। बाह्य जगत् से संपर्क स्थापित करने का माध्यम हमारी इंद्रियां हैं।

मन की चंचलता इंद्रियों की चंचलता पर बहुत निर्भर है। ध्यान में कहा जाता है-आंख बंद कर लो। इसका मतलब है कि बाह्य रंग-रूप के जगत् के साथ अब तुम संपर्क नहीं रखोगे। कान भी बंद कर लो, शब्द को मत सुनो। बाह्य जगत् से तुम्हारा संपर्क टूट जाए। पांचों इंद्रियों का निरोध, उनकी प्रतिसंलीनता, उनका संयम इसीलिए है कि मन की चंचलता न बढ़े। मन चंचल तब बनता है जब इंद्रियां चंचल होती हैं। मन की समस्या का समाधान है मन का सम्यक् नियोजन। मन को एक विषय पर, एक आलंबन पर लगा दो। इसीलिए श्वांस का आलम्बन लिया गया। श्वांस पर मन टिका दो। मन जितना एक विषय पर टिकेगा, एकाग्रता बढ़ेगी और इंद्रिय चेतना का सम्यक् नियोजन हो जाएगा। फिर इंद्रियां समस्या पैदा नहीं करेंगी और मन भी समस्या पैदा नहीं करेगा।

देखने की कला, सुनने की कला, चखने की कला, सुगंध की कला और सुनने की कला है प्रेक्षाध्यान। रेखाएं खींची जाती हैं और चित्र बन जाता है। रेखांकन चित्रांकन हो गया। रेखाएं कुछ नहीं लग रही थी, चित्र बना, एक कलाकृति बनी, सुंदर लगने लग गया। हम भी अपने अंतरजगत् को बहुत सुंदर बना सकते हैं। बाहर से तो रंग-रूप का पता नहीं लगता। आवेश इतना उग्र होता कि घर ही नहीं, गली-कूचें को अशांति और तनाव से भर देती। यह भीतर का भद्दापन हमारे व्यवहार में आ जाता है।

प्रति पल, प्रति सेकेंड 30-35 विचारों का निस्सरण होता है। एक विचार के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा विचार। एक साथ अनेक विचार आते हैं और उन विचारों का नियोजन न करें तो समस्या पैदा होती है। प्रेक्षाध्यान से विचार के सम्यक् नियोजन की कला उपलब्ध हो सकती है। दुनिया का नियम है- जिसे लोग देखना चाहते हैं, उसे वह नहीं देखता और जिसे नहीं देखता, उसे वह देखने लग जाता है।

वर्तमान दुनिया समस्याओं से बहुत घिरी हुई है। एक समस्या सुलझती है और दूसरी समस्या फिर सामने आ जाती है। हमें इंद्रिय चेतना से काम लेना है, व्यवहार के धरातल पर जीना है। आदतों को भी हम एकदम नहीं छोड़ सकते और उनसे पैदा होने वाली समस्याओं का भी अतिक्रमण नहीं कर सकते पर यदि हमारा लक्ष्य बन जाए कि हमें अतीन्द्रिय चेतना का विकास करना है तो काफी परिवर्तन आ सकता है, हमारी समस्याएं गौण बन सकती हैं। जो समस्याएं आज भार और तनाव का रूप ले रही हैं, उनमें परिवर्तन आ सकता है। जब तक मन और इंद्रियों की चंचलता है तब तक अतीन्द्रिय चेतना का विकास होना संभव नहीं है।

महावीर की वाणी है कि हमारी चेतना शरीर के आगे से भी निकलती है, पीछे से भी निकलती है, दाएं-बाएं भाग से भी निकलती है, ऊपर से भी निकलती है। ये शरीर से बाहर आने के पांच निर्गम द्वार हैं, जिनसे हमारी चेतना बाहर आती है पर भीतर में चंचलता इतनी है कि बाहर आ ही नहीं सकती। उसे आने का रास्ता ही नहीं मिलता।

जब-जब ध्यान का प्रयोग चले तब-तब आप एकाग्र रहने का अभ्यास करें, यह पर्याप्त नहीं है। जब भी खाली रहें, ध्यान का सत्र नहीं चल रहा है, उस समय भी इंद्रियों के नियोजन का, मन के नियोजन का और चंचलता को कम करने का अभ्यास करें। इतनी तन्मयता, इतनी लगन हो जाए, तो सचमुच लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं और अतीन्द्रिय चेतना के जागरण की अनुभूति हो सकती है। एकबार अनुभूति हो जाए, थोड़ा-सा अनुभव हो जाए तो फिर किसी उपदेश की जरूरत नहीं, कुछ कहने की जरूरत नहीं। वह अनुभूति ही आपको आगे बढ़ा सकती है। आपका उसके प्रति समर्पण भी सम्यक् रहे तथा तन्मयता के साथ उसका अभ्यास करते रहें तो विकास निश्चित ही एक नई दुनिया का अनुभव कराएगा।

मन अपने आप में कुछ नहीं है। पंखा चल रहा है। अब हम पूछें-ये ताड़ियां चल रही हैं, क्या इनमें अपने आपमें गति है? इनकी अपनेआप में कोई गति नहीं है। करंट आ रहा है, विद्युत का प्रवाह आ रहा है, स्विच ऑन किया और पंखा चलने लग गया। मन अपने आप में संचालित नहीं है। इसे पंखे की ताड़ियों की तरह देखें। भाव का प्रवाह आता है और मन संचालित हो जाता है। अगर वह शुद्ध भाव का प्रवाह आया तो अच्छे काम में मन लग जाएगा। अशुभ भाव का प्रवाह आया तो बुरे काम में लग जाएगा।

भाव अशुद्ध है तो मन हिंसा, झूठ, चोरी-इन सबमें प्रवृत्त हो जाएगा। वचन और शरीर भी इनमें प्रवृत्त हो जाएंगे। जब प्राणी हिंसा में प्रवृत्त होता है तो कर्म का बंध होता है। कर्म का बंध होता है तो पुनर्जन्म होता है। पुनर्जन्म का आधार है कर्म का बंध। पुनर्जन्म होता है तो फिर शरीर की रचना होती है, इंद्रियों की रचना होती है। इंद्रियां विषय का ग्रहण करती हैं, बाह्य जगत् से संपर्क स्थापित करती हैं, फिर राग और द्वेष होता है, कर्म का बंध होता है, फिर संसार का भ्रमण होता है। यह मोह की व्यूह रचना है इस व्यूह से बाहर निकालना है तो मूल बिंदु को पकड़ना होगा । प्रहार कहां करना है, यह मूल बिंदु को पकड़े बिना नहीं सोच सकते। मूल बिंदु है भाव। हम भाव पर विचार करें, संकल्प करें-अशुभ भाव का निरोध करना है, शुभ भाव का विकास करना है।

अगर आप मन पर चोट करेंगे तो मन और ज्यादा उद्दंड बन जाएगा। आप चोट करेंगे शरीर पर, वाणी पर तो ये और ज्यादा उच्छृंखल बन जाएंगे। अगर आपको परिवर्तन करना है तो भावतंत्र पर चोट करें, भाव शुद्धि का अभ्यास करें, भीतर जायें।

शरीर पर मत रुको, वचन पर मत रुको, मन पर मत रुको, भाव तंत्र तक जाओ। वहां जाओगे तो तुम्हारी समस्या का समाधान होगा। मन पर ही अटक गये तो समाधान नहीं मिलेगा। मन स्वयं चंचल है, वह हमारी समस्या का समाधान कैसे करेगा? जो स्वयं चंचल है, वह समस्या को कैसे सुलझायेगा? भावतंत्र तक जाओ भावतंत्र को देखो और फिर उसका परिष्कार करो। चोट भाव पर करो तो तुम्हारा काम ठीक होगा, काम चालू हो जाएगा।

आहार से ज्यादा सूक्ष्म कारण है हमारा भाव तंत्र। यदि व्यक्ति डरता है तो उसका गुर्दा खराब हो जाएगा। भय का गुर्दे पर असर आता है। ध्यान दिया जाए, भावतंत्र के आधार पर मीमांसा करें तो जो व्यक्ति ज्यादा कलह करता है, उसके लीवर की जांच करा लेनी चाहिए। लीवर यदि ठीक काम नहीं कर रहा है तो आदमी अकारण उदास बन जायेगा।

प्रेक्षाध्यान एक घंटा मन को एकाग्र करने की साधना ही नहीं है, वह जीवन का एक समग्र दर्शन है। जो व्यक्ति अच्छा जीवन जीना चाहता है, उसे प्रेक्षाध्यान की प्रणाली को सम्यक् प्रकार से हृदयंगम करना होगा। क्योंकि शारीरिक, मानसिक रोग आते हैं, रोग व्यथित करते हैं, जीवनचर्या को गड़बड़ा देते हैं। हमें उन पर विचार करना है। विचार करने के लिए भाव जगत् पर जाना है। भावतंत्र की सूक्ष्मता से मीमांसा होगी तो हम सचाई तक पहुंच पायेंगे।

एक व्यक्ति न ध्यान करता है, न जप करता है, किंतु एक संकल्प करता है कि मैं 24 घंटा अपने भाव के प्रति जागरूक रहूंगा और अधिकतम भाव को विशुद्ध बनाए रखूंगा। मैं मानता हूं कि उसके लिए ध्यान की जरूरत नहीं है। ध्यान स्वयं हो गया। उसके लिए और कोई कार्य की जरूरत नहीं है। भाव विशुद्धि है तो समाधान हाथ में आ गया। इसलिए हम मन की सीमा को पार करें, भीतर जाएं, भाव को विशुद्ध बनाएं, स्वास्थ्य और प्रसन्नता का रहस्य उपलब्ध हो जाएगा।

जब तक मोह नहीं मिटता, तब तक आदमी नहीं बदलता। मोह प्रबल है तो आदमी नहीं बदलेगा। मोह कम हुआ और आदमी बदलना शुरू हो जाएगा। बदलाव की निश्चित शर्त है- मोह कम होना चाहिए। समस्या यह है कि पदार्थ जगत इतना बड़ा है कि न मोह कम होता है और न आदमी बदलता है।

नगाड़ा बजे तो नट ऊपर चढ़ सकता है। मोह मिटे तो मनुष्य का ऊर्ध्वारोहण हो सकता है, उसका चरित्र बदल सकता है। हमारी सबसे बड़ी समस्या है- मोह। जब मनुष्य मोहग्रस्त होता है, उसे कुछ भी पता नहीं चलता। मोह का ऐसा अहंकार छा जाता है, जिसे न सूरज मिटा सकता है, न चांद मिटा सकता है। दुनिया के तम के हरण करने वाला सूरज मोह के तम को मिटाने में कभी सफल नहीं हो सकता।

- शेष पृष्ठ पांच पर

सांझीकला में बालिकाओं का सांस्कृतिक बोध

-डॉ. कहानी भानावत-

सांझी कुमारिकाओं का पन्द्रह दिवसीय व्रतानुष्ठान है। प्रतिदिन संध्या को बालिकाएं घर की मुख्य दीवार पर गोबर से इसका मंडन करती हैं। श्राद्ध पक्ष में प्रतिदिन संध्या को पुरानी आकृतियां उखाड़ कर नई आकृतियां उभारती हैं और उन्हें स्थानीय रंगबिरंगी फूलों की पंखुडियों से सजाती हैं। श्राद्ध के अंतिम दो दिन एक विशाल कोट के रूप में सांझी का मंडन स्थिर रहता है और अंतिम दिन पिछली सारी संझाओं सहित कोट की सांझी मिलाकर समूह रूप में सरोवर के जल में विशेष संस्कारपूर्वक विसर्जित की जाती है।

पंखी

सांझीकला कन्या-कलाओं की एक विशिष्ट पारंपरिक धरोहर है। इसका फैलाव राजस्थान से प्रारंभ होकर गुजरात, मालवा, हरियाणा, दिल्ली, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र और ठेठ नेपाल तक देखने को मिलता है। इसके विभिन्न नामों में संजा, सांझी, संध्या, सैझा, संझुली, सांझुलदे, सिंझा, सांझ्या नाम प्रमुखता से मिलते हैं। मेवाड़-मालवा में यह संज्ञा हंज्या-हांजी के रूप में जानी जाती है। बुंदेलखंड़ में इसे मामूलिया, महाराष्ट्र में गुलाबाई तथा हरियाणा में धूंधा कहा जाता है।

संझ्या का व्रत कुमारिकाओं के अन्य व्रतों से सर्वथा भिन्न है। इसमें एकओर कलातत्वों का रंग-सौंदर्य मिलता है तो दूसरी ओर बालसुलभ संस्कृति का संस्कारित जीवन अभिव्यक्त होता है। गीतों के माध्यम से जहां भरपूर मनोविनोद होता है वहां अन्तर का उल्लास भी अपनी कोमलतम भावाभिव्यक्तियों को लेकर प्रस्फुटित होता है। सांझी जब बनाई जाती है तो उसकी पूर्व तैयारी से लेकर अंतिम फलश्रुति तक में कन्याओं की सखी-सहेलियों, माताओं, बहनों, अन्य परिजनों एवं पास-पड़ोस के लोगों का भी सहयोग रहता है। इससे यह लगता है कि हर घर-परिवार की लड़की जो संझ्या बनाती है वह अपनी संझ्या को सर्वप्रकार से श्रेष्ठ बनाने के लिए कोई कसर बाकी नहीं रखती है और इस तरह संझ्या बनाने की मंगल होड़ भी चलती रहती है।[1]

चोपड़

निमाड़ी लोकसाहित्य के गहन अध्येता रामनारायण उपाध्याय ने सांझी को संध्यादेवी की आकृति का स्वरूप कहते हुए सांझफूल नाम दिया और निमाड़ के भित्तिचित्रों में महत्वपूर्ण माना। 2 निमाड़ी लोकरंग के चितेरा बसंत निरगुणे ने सांझी को सांझाफूली नाम से चित्रित करते हुए निमाड़ी किशोरियों का सबसे प्रिय त्यौहार कहा है।[3] डॉ. शंकरलाल यादव ने सांझी को दुर्गा का रूप, बालिकाओं की आराधना तथा संध्या माना।[4] डॉ. प्रफुल्लकुमार सिंह 'मौन' ने मिथिला की सांझी का अध्ययन करते हुए लिखा कि उसमें संध्या का अभिनंदन गीत, गायन, दीपदान, आरती, नृत्य-अभिनय एवं चित्र-अलंकरण से किया जाता है। वहां के आंगनों में कहीं-कहीं सांझी (संध्या) के ठांव (अल्पना) की मंत्रों एवं गीतों द्वारा पूजा भी की जाती है।[5]

श्राद्ध पक्ष में तिथि के अनुरूप सांझी के संख्या-क्रम रूप मिलते हैं। इनमें जो अंकन मांडे जाते हैं उनका कोई एक रूप देखने को नहीं मिलता किंतु एक गवाड़ी, शहरी, बस्ती अथवा गली में जो बालिकाएं संझ्या मांडती हैं उनके रूप प्रायः एकरूपता लिए होते हैं। मोटे रूप में तिथि-क्रम से सांझी के विविध रूप अथवा आकृतियां वही संख्या लिए निम्नांकित रूप में होती हैं-

1. पाटला पूनम (पूर्णिमा)	: पांच हाथ, पांच पछेटे, पांच फूल, पांच टपकी, पांच टोपे।
2. एकम	: एक डोली, एक थाल, एक कटोरा, एक बिजोरा, एक ढाल, एक तलवार, एक फूल।
3. बीज (द्वितीया)	: बीरन बेटी, बीजणी, बछेरी, बीज का चंद्रमा बीजोरा।
4. तीज (तृतीया)	: तीन तिबारी, चांद-सूरज-तारा, तराजू, तीन गोला त्रिशूल।
5. चौथ (चतुर्थी)	: चौपड़, चरभर, चार रास्ते, चकलोटा-बेलन, चकमक, चरू-चरी, चीड़ा-चीड़ी।
6. पांचम (पंचमी)	: पान-सुपारी, पांच सिंघाड़े, पांच फूल, पत्तल-दोने, पांच कुंवारे।
7. छठ (छठी)	: छतरी, छाछ-बिलौना, छाबड़ी फूलों भरी, छह डाली।
8. सातम (सप्तमी)	: सातिया, सात ऋषि, साल, शमी।
9. आठम (अष्टमी)	: अठकली फूल, आम, आल, अन्नपूर्णा।
10. नम (नवमी)	: निसरणी, नगाड़े की जोड़, नाव, नौ डोकरे-डोकरी, नल-दमयंती।
11. दसम (दसमी)	: दस थैली, वांदरवाल, दस दीये, दशामाता, दीयाड़ी।
12. ग्यारस (एकादशी)	: दो जनेउ, गुल्ली-डंडा, दो डंका, झालर-डंका, राम-रावण।
13. बारस (द्वादशी)	: इस दिन कोट बनाया जाता है जो अमावस तक बना रहता है।

कोट

सांझी की जो क्रमवार आकृतियां उभारी जाती हैं वे प्रतिदिन की तिथि से पूर्णतया मेल खाती हुई लगती है। यह संगति जहां शाब्दिक रूप से अनुप्रासंगिक लगती है वहां अपने अंतर्गठन में भी यह पूर्णतया प्रासंगिक है। उदाहरण के लिए पाटला पूनम में प वर्ग की पुनरावृत्ति हुई है। इस दिन की बनने वाली सांझी भी इसी दिन की द्योतक है यथा- पांच हाथ, पांच पछेटे, पांच फूल। इसी प्रकार एकम को बनने वाली सांझी एकी (एक) संख्या लिए होती है। जैसे एक डोली, एक थाल, एक कटोरा, एक ढाल, एक तलवार, एक बीजोरा आदि। यह क्रम सभी तिथियों की संझ्याओं में मिलता है।[6]

सांझी के उद्‌भव को लेकर डॉ. महेन्द्र भानावत ने बगड़ावत लोकगाथा में वर्णित कथा का उल्लेख करते हुए लिखा कि गाथानायक अजमेर के राजा बीसलदेव के भाई मांडलजी के पुत्र हरिजी के बाघजी नामक एक विचित्र पुत्र पैदा हुआ जिसका मुंह शेर का तथा धड़ मनुष्य का था। इसलिए इसे अलग से बाग में रखा गया और उसकी देखभाल का जिम्मा एक खोड़ये अर्थात लंगड़े ब्राहमण के सुपूर्द कर दिया गया। संझ्या संबंधी बालिकाएं जो गीत गाती हैं उसमें 'खुड़-खुड़ रे म्हारा खोड्या जमाई, यूं संज्या ने लेवण आयो रे' पंक्ति इस तथ्य को उजागर करती है।

बाघजी का डीलडौल और आकृति बड़ी भयानक थी। श्रावण में झूला झूलने लड़कियां बगीचे में आती तो धीरे-धीरे बाघजी से हिलमिल गई। एक दिन बाघजी ने कालू से कहा कि तुम कइयों के भविष्य-कथन करते हो और विवाह के लग्न कराते हो तो मेरा भी भविष्य कथन कर बताओ कि किस कन्या से मेरा विवाह होगा? इस पर कालू ने कहा कि झूला झूलने जो लड़कियां आ रही हैं उनमें से जितनी आप अपनी बाथ में कैद कर सके उन सबसे आप विवाह कर लेना। बाघजी ने अपनी दोनों भुजाएं फैलाई तो उनमें तेरह लड़कियां आ समाई। यह देख कालू ने मजाक में कहा कि मैंने आपके लगन निकाले तो दक्षिणा में मुझे भी कोई लड़की मिलनी चाहिए। बाघजी ने कहा कि इन तेरह में से जो तुझे अच्छी लगे उसे ले ले। उन लड़कियों में सबसे सुंदर लड़की कालू ने पसंद की जिसका नाम संझ्या था। 7

सांझीकला मुख्य रूप से फूल-संस्कृति का चेतन सौंदर्य लिए मुखरित होती है। प्रकृति के विभिन्न उपादानों में सर्वाधिक सौंदर्य का प्रस्फुटन फूलों में देखा जाता है। ये फूल केवल कला की उत्कृष्टता को ही इंगित नहीं करते अपितु अपनी समग्र सुगन्धावली का भी प्रस्फुटन करते हैं। प्रकृति की समग्र कलाचेतना की विविध रंगावलियों से सराबोर यह फूल-संस्कृति सांझीकला में सर्वाधिक महत्वपूर्ण होकर प्रतिष्ठित हुई है।

संझ्या ऋतु में जो फूल जिस अंचल में खिले मिलते हैं उन्हीं से संझ्या सजाई जाती है। मालवा में जहां गुलतेवड़ी, गलुबांस और गुलगुट्टे के फूलों की अधिकता पाई जाती है वहां रंगों के प्रदेश राजस्थान में गुलाब, तमणिया, सण, गेन्दा, कनेर, गुलतेवड़ी, गुलबांस, चम्पा, चमेली, चांदनी और छोर्‌यांगल के फूलों की बहुतायत देखने को मिलती है। छोर्‌यांगल के फूल बड़े ही रंग-बिरंगे होते हैं। एक ही फूल में कोई लाल, कोई सफेद तो कोई पीला रंग लिए होता है। ये रंग आधे-आधे फूलों में बड़ी खूबसूरती का उभार देते हैं।

राजस्थान के रेगिस्तानी इलाके में जहां फूल नही के बराबर होते हैं वहां आक के फूल से ही सांझी का श्रृंगार किया जाता है। इनके अलावा चावलों को कुंकुम में रंगकर भी संझ्या सजाई जाती है। ऐसा कुंकुम मिश्रित चावल भी यहां फूल ही कहा जाता है। अन्तर केवल इतना है कि इस फूल को फूल चूंटना नहीं कह कर फूल बनाना कहते हैं।

फूल प्रत्येक मांगलिक कार्य की शुभ संस्कृति है। कोई देवी-देवता ऐसा नहीं जिसके फूल की छांट पड़ती हो। लोकगीत फूलों की आरती और उनके चढ़ावे से भरे पड़े हैं। कन्याएं भी फूलों का ही सर्वाधिक श्रृंगार कर अपने को खुश और तरोताजा बनाये रखती हैं। कई प्रांतों में महिलाएं अपने बालों का फूलों से सवाया श्रृंगार करती हैं और अपनी चोटी में पुष्प लगाकर दिनभर गंधयुक्त वातावरण किये रहती हैं। विशिष्ट त्यौहारों और लोकोत्सवों पर फूलों की सज्जा एक पारंपरिक संस्कार बना हुआ है।

सांझी भी फूलों से फलित होने वाली, उनकी गंध से सुगंधित रहने वाली सदाबहार हरफूली चित्रावण है। वह जब फूलों का श्रृंगार करती है तो पूरे मन से करती है। फूलों से भरी छाबड़ी उसके लिए तैयार रहती है। उसकी सज्जा में एक फूल भी यदि कम पड़ जाता है तो वह बुरी तरह रूस जाती है। संझ्या गीत की यह पंक्ति- 'एक फूल घटीग्यो, संझ्या बैना रूस गी' (एक फूल कम हो गया, संझ्या बहिन रूठ गई), बार-बार इस बात का स्मरण कराती है कि संझ्या के चित्रावण अथवा पूजा-विधान में चाहे जैसा रूप-स्वरूप अंकित किया जाय मगर फूल की एक पांखड़ी भी कम न पड़ने पाये, नही तो संझ्या की नाराजगी किसी अनिष्ट को भी जनम दे सकती है।

संझ्या बनाते समय लड़कियां एक-एक फूल और उसकी पंखुड़ी को बड़े यत्नपूर्वक सहेजती हैं और गोबर पर हल्का-हल्का दाब देती हुई श्रृंगारती हैं। इसमें इस बात की पूरी सावधानी रखी जाती है कि फूल अथवा पंखुड़ी नीचे न गिरने पाये। यदि ऐसा कुछ हो भी जाता है तो उस फूल अथवा पंखुड़ी को संझ्या की सज्जा के लिए काम में नहीं लिया जाता है। फूलों में सांझी को सफेद फूल सर्वाधिक प्रिय हैं। उसका वर्ण श्वेत फूलों सा गौर वर्ण था अतएव गीतों में उसका गौरांबाई नाम भी सुनने को मिलता है।

संझ्या की रूचियां भी अनूठी रही हैं। इनका विश्लेषण करते हुए डॉ. महेन्द्र भानावत का यह कथन द्रष्टव्य है- अपने पहनावे में भी वह फूलों के बूंटों को अधिक महत्व देती थी। उसका घाघरा फूल भांत का, आम्र रंग के घाघरे पर करेले भांत की बूंटियां उसे अधिक सुहाती हैं। शादी के बाद वह छटापटा का, विविध फूलों के रंगोवाला, अलग-अलग रंगों की कलियों का घाघरा सिलवाने के लिए अपने बाबुल से कहती है। उसके चीर पर छाबड़ी की भांतें हैं। सहेलियां जब सांझी को पहनने-ओढ़ने के लिए पूछती हैं तो सांझी अपना मनपसंद पहनावा 'चूंदड़ ओढ़ने और 'मिसरू' पहनने को कहती है। सिर पर सोने का बोर और मोतियों से मांग भरने को कहती है। आभूषणों में उसे हार, बिछिया और रखड़ी प्रिय है। वह आंखों में काजल, माथे पर टीकी लगाती है। पान का बीड़ला, हरिया गोबर, गेंदे-गेंदे फूल और अच्छे-अच्छे गहनों-कपड़ों की उसे चाहत बनी रहती है। वह सरल शांत है पर हल्के तेज मिजाज वाली है। कोमलांगी है पर शीघ्र रूठने वाली है। आरती के एक गीत के अनुसार संझ्या बारह वर्ष की कन्या है। 8

तिबारी

संझ्या का मूल अंकन गोबर से उभारा जाता है। गोबर से बनी कोई भी रेखा-आकृति आसानी से उभार पा जाती है और जल्दी से सूखती भी नहीं है इसलिए उस पर फूल, पंखुड़ियां, पत्ते आदि भी जल्दी से, भलीप्रकार से चिपक जाते हैं। यह गोबर गाय का होता है। गाय का गोबर बड़ा पवित्र और मांगलिक माना गया है। उस गोबर में भी लड़कियां कुंवारी गाय अर्थात् गाय की बछिया के गोबर का ही उपयोग करती हैं। गोबर को संझ्या अंकन के अनुरूप बनाने के लिए उसमें पानी मिलाकर भलीप्रकार मथकर लुग्दी जैसा गाढ़ा बना लिया जाता है। उसके बाद अपने नन्हें-नन्हें हाथों से लड़कियां सहमे-सहमे थप्पे देकर सांझी की विभिन्न आकृतियां उभारती हैं और तदनन्तर उन्हें फूलों से सजाती हैं।

- शेष पृष्ठ पांच पर

स्मृतियों के शिखर (172) : डॉ. महेन्द्र भानावत

सूप भूप दोनों समभावी

भूप जैसे प्रजा में सम्प एवं भाईचारा बनाये रखने के लिए चोरी-चकोरी करने वालों, लुच्चे-लफंगों, बेइमानों, तस्करों, अत्याचारों तथा गेर हरकतों से संबंधित लोगों के प्रति कठोर दंड एवं सजा देता है और यहां तक कि उन्हें भदर कर देश निकाला देता है, उसी प्रकार सूप भी अर्थहीन, अनुपयोगी, नुकसानदेह, रोगी बनाने तथा रोग बढ़ाने जैसी व्यर्थ की चीजों को बाहर का रास्ता बताता है।

वह बुढ़िया नितान्त अपढ़ थी। मेवाड़ के उस छोटे से गांव में दो ही परिवार गांछों के थे। बुढ़िया की उम्र 80 पार थी लेकिन वह बड़ी श्रमशील थी। मैं जब उससे मिलने पहुंचा तो वह सूपड़ा ही बना रही थी। बांस की पतली-पतली लम्बी पट्टियों से आंकड़-बांकड़ बुनाई जैसी भांत निकालती हुई बड़ी स्फूर्ति से देखते-देखते उसने सूपड़ा तैयार कर दिया। सूपड़े की पीछे की दीवाल ऊंची, उसके आजु-बाजु की, दोनों ओर की अपेक्षाकृत छोटी, उतार लिए और आगे का हिस्सा खुला चौड़ा रपट खाता ताकि जो भी धानचून साफ किया जाय, नीचे जमीन पर रलकता रहे।

बातचीत करने पर उसने बताया कि बांस की सहायता से उसका परिवार खानदानी रूप से कई चीजें बनाकर गांव वालों की मांग पूरी करता है। यही उसकी रोजी का साधन है। घर का कामकाज करने के बाद महिलाएं भी इस काम में लग जाती हैं। बच्चे-बच्चियों को भी उनकी रुचि के अनुसार हम जो उपकरण बनाते हैं उनसे छोटे-छोटे आकार की चीजें वे बनाते हैं।

बुढ़िया ने बताया कि मुख्य रूप से उसके द्वारा निर्मित टोपले-टोपली, बच्चों को सुलाने के लिए पालणे, छावें, टाटियां, पूर्वजों की मूरत रखने के कंडिये, पौधों के संरक्षण हेतु करवले, देवता को झुलाने के लिए पालणिये, रोटी रखने के चंगेड़ी, झाड़ू, बीजणे-बीजणी, पानी पिलाने की झोंपड़ी, कुए की खुदाई से मिट्टी-पत्थर निकालने के कोइड़े-कोइड़ी, दरवाजे पर पर्दे की जगह लगाने की चकें, बैठने के मुड्डे-मुड्डी, विवाह पर द्वार आये बनड़े के स्वागत हेतु आरती जैसी चीजें हर घर-परिवार के लिए आवश्यक होती हैं। लड़की की विदाई पर विवाह सूचक बड़ा टोपला दिया जाता है। इसमें खाजे, पापड़, गुझिये आदि रखकर ऊपर लाल कपड़ा ढक दिया जाता है और लच्छे से टोपले के चारों ओर बांध दिया जाता है। यह लड़की की विदाई का मांगलिक उपहार माना जाता है।

बुढ़िया ने बताया कि अन्य चीजें तो रोजमर्रा की हैं परन्तु विवाह पर जो चीजें काम में आती हैं वे पहले से तैयार नहीं की जाकर मांग के अनुसार पूर्ति करने वाली हैं। इन सबमें सूप का विशिष्ट और अलग महत्व है। राजस्थान के मेवाड़ अंचल में सूपड़ा, एक अन्य नाम 'हूपड़ा' से भी जाना जाता है। बुढ़िया 'सूप तो भूप है' कहकर बोली कि बांस के सारे उपकरणों में तो सूप ही होता है जो भूप जैसा कारज साधता है अर्थात् भूप यानी राजा, जनता अर्थात् प्रजा का शासक होता है। एक दूसरे के बिना न जनता का और न राजा का ही कोई अस्तित्व रहता है। राजा अर्थात् भूप वही काम करता है जो सूप करता है। अच्छा राजा अच्छी प्रजा से ही शोभित होता है। सूप भी घर-गृहस्थी में काम आने वाले खाद्यान्न को साफ कर लोकजन को स्वस्थ बनाये रखता है।

मेरी बड़ी बहिन सोहन जीजां (93) ने बताया कि विवाह पर तो सूप को लेकर एक पूरी रस्म ही होती है। चाक नूतने के दिन यह रस्म पूरी की जाती है। जितने दिन विवाह के यथा तीन, पांच या सात दिन शेष रहते हैं उतने ही दिन का चाक पूजा जाता है। दिनों के अनुसार तेलवान व दोवड़ा बांधते समय परिवार की दो बहुएं तथा दो बेटियां बारी-बारी से अपने हाथ में सूप व मूसल ले आपसी आदान-प्रदान के रूप में जो रस्म अदायगी करती है वह 'हाल-सूपड़ा' कहलाती है।

इसके अंतर्गत प्रथम चरण में दो महिलाएं अपने हाथों में सूप लेकर बैठ जाती हैं। सूप में विवाह के शेष दिन के संख्यासूचक तीन, पांच अथवा सात तरह का धान-अनाज यथा गेहूं, मक्की, चावल, जौ, ज्वार, चना, मूंग-सूप में लेकर एक-दूसरे को परस्पर झेलाती अर्थात् अदला-बदली याकि आदान-प्रदान करती हैं। इस क्रिया में जो अनाज सूप में डाला जाता है उसकी कोई भी ध्वनि किसी को नहीं सुनाई दे, यह ध्यान रखा जाता है। इसके बाद सूप का वह अनाज माटी के दीवाणियों अर्थात् दीपकों में लेकर माया अर्थात् गणपति स्थापना के मुख्य स्थल के वहां रख दिया जाता है। सूप की बनावट बहुत महीन, ऐसी महीन अथवा बारीकी लिए होती है कि उसमें से राई का दाना याकि कण भी नहीं निकल पाता है।

विवाह के अवसर पर ही जब वर पक्ष के लोग बरात लेकर वधू पक्ष के घर जाते हैं तब पीछे से महिलाएं टूंटिया अर्थात् खोड़िया निकालती हैं। यह नकली वर-वधू का दृश्य होता है। इसमें वर तथा वधू का जुलूस रूप में स्वांग निकाला जाता है। वादक के रूप में कोई महिला अपने हाथ में सूप बजाती चलती है। उसके पीछे वर-वधू तथा उनके पीछे महिलाओं का झुण्ड प्रहसन रूप में सवारीनुमा निकलता है। घर लौटकर शेष रात्रि महिलाएं मिलकर एक के बाद एक कई तरह के स्वांग-कौतुक कर खासा मनोरंजन करती हैं। लेखक ने ऐसे 40 से अधिक स्वांग-कौतुकों का अध्ययन किया है। महिलाओं के इस प्रहसन में पुरूषवाची भागीदारी पूर्णतया प्रतिबंधित रहती है। वैसे भी बारात चली जाने पर घर में कोई पुरूष नहीं रहता है इसीलिए रात्रि भर जागरण के रूप में भी रात-रात भर ऐसे महिला-मनोरंजन की परंपरा सार्थक लगती है ताकि घर की सुरक्षा भी भलीभांति हो जाती है।

इन्हीं स्वांग-कौतुकों अथवा ख्याल-झामटड़ों में एक मजेदार कौतुक बेरी अर्थात् बहरी होता है। यह एक ऐसी महिला होती है जिसे नहीं के बराबर सुनाई देता है। घूंघटधारी इस बेरी के हाथ में एक सूप होता है जिसमें छोटे-छोटे कंकड़ लेकर उन्हें साफ करने का उपक्रम करती है। कभी वह सूप को बाएं-दाएं घूमाकर कंकरों को ररकाती है तो कभी थोड़ी ऊंचाई से उन्हें पटकनी देकर पछांटती हुई मुंह की हवा द्वारा साफ करने का उपक्रम करती है। इस बीच एक औरत उसके पास आकर उसके कान में जोर से कभी उसके पीहर से संबंधित मां, बहिन, भुआ, भतीजी के आने की तो कभी उसे ससुर पक्ष की सास, जेठानी, देवरानी के बारी-बारी से आने की खबर देती है।

बेरी अपने पीहर के परिजनों के आने की खबर सुनते ही अति हर्षित एवं प्रफुल्लित होती है और वहीं पास बैठी किसी महिला से गले मिल उल्लसित होती है किंतु जब उसे ससुर पक्ष की समधिनों के आने की खबर दी जाती है तब वह अपने नकारात्मक भाव व्यक्त करती हुई उन्हें महत्वहीन करार देती है। नमूनार्थ यह संवाद दृष्टव्य है-

महिला - बेरी ए बेरी थारा सासूजी आया। (बहरी ऐ बहरी, तेरे सासूजी आये हैं।)

बेरी - आया वेगा ए, असी खरी दपरी में अतरो तावड़ो पड़ीर्यो है के म्हारी तो आंख्यांई नीं उगड़ी री है। (आये होंगे री, ऐसी धूप चढ़ती दोपहरी में मेरी तो आंखें ही नहीं खुल रही हैं।)

महिला - बेरी ए बेरी थारी मां आयी है। (बहरी हे बहरी, तेरी मां आई है।)

बेरी - कठे है म्हारी मांवड़, घणा दनुं आज मलवा रो मौको मल्यो ए म्हारी मां, थूं हाऊ तो री। छोरा दौड़ो रे थांणी नानी आयी। खीर मालपा लाई, रबड़ी-वासुंदी लाई, झकोलमा पुड़ियां ने अमचूर रो जीमण करो। (कहां है मेरी मां! बहुत-दिनों से आज मिलने का अवसर मिला। पास बैठी महिला के गले झूमती बोलती है- तू अच्छी तो रही? बच्चों दौड़ के आओ, तुम्हारी नानी आई है। साथ में खीर-मालपुए लाई है। रबड़ी-वासुंदी लाई है, झकोलमा पूड़ी व अमचूर का जीमण जीमो।)

बांस के सूप के अलावा एक सूप और होता है जो सण अर्थात् एक विशेष प्रकार की हल्की लकड़ी से बना होता है जिसे बरू कहते हैं। यह सूप 'छाजला' नाम से जाना जाता है। इसके दोनों ओर कोनों पर मजबूती तथा खूबसूरती के लिए चमड़े की पट्टी लगा दी जाती है। विवाह पर चित्रित एवं भित्ति चित्रों में कृष्ण को जेल से बाहर ले जाने के लिए छाजलों में बैठाते हुए दिखाया जाता है।

कहना नहीं होगा कि सूप सचमुच में भूप का ही काम करता है जो नकारात्मक चीजों को अलग कर देता है और खाद्यान्न की चीजों में शुद्धता एवं स्वच्छता लाने को तत्पर रहता है। भूप जैसे प्रजा में सम्प एवं भाईचारा बनाये रखने के लिए चोरी-चकोरी करने वालों, लुच्चे-लफंगों, बेइमानों, तस्करों, अत्याचारों तथा गेर हरकतों से संबंधित लोगों के प्रति कठोर दंड एवं सजा देता है और यहां तक कि उन्हें भदर कर देश निकाला देता है, उसी प्रकार सूप भी अर्थहीन, अनुपयोगी, नुकसानदेह, रोगी बनाने तथा रोग बढ़ाने जैसी व्यर्थ की चीजों को बाहर का रास्ता बताता है।

लोकजीवन में हाथी के कान को सूप की उपमा दी गई है। सूप जैसे ही आकार और गुण-धर्म के प्रतीक हाथी के कान हिलते-डुलते शुद्ध पर्यावरणजनित वायु को कानों के माध्यम से भीतर प्रविष्ट कराते हुए हाथी को स्वच्छ, शुद्ध तथा निरोगी बनाये रखता है वहीं किसी को जड़मूल से उखाड़ने, मटियामेट करने के लिए 'सूपड़ा साफ कर देना' कहावत बड़ी लोकप्रिय है।

मानव जीवन के साथ सूप का महत्व सदैव ही स्वीकार्य रहा है। कबीर ने तो संतों और साधुओं के पवित्र एवं वंदनीय जीवन-स्वभाव को सूप जैसा ही मानकर उसका महत्व कई गुना बढ़ा दिया है। जैसा सूप सारभूत चीजों को उनके साथ लगे आलतू-फालतू के कूड़े करकट को अलग कर देता है वैसे ही संतजन भी अपने स्वभाव को सूप की भांति पवित्र बनाये रखते हैं। मेरी मां कहती थी कि फसल में जैसे खरपतवार, गेहूं में जैसे कायमा और धान-चून से कंकड़-मिट्टी अलग किये जाते हैं वैसे ही सूप थोथी चीजों को अलग कर शुद्ध-टंच बना देता है। बकौल कबीर-

साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय।।

इसीलिए कहावत चल पड़ी-सूप भूप है। घरों में सूप यों ही जमीन पर अटारे की तरह रखा नहीं जाकर दीवाल पर खूंटी की शोभा बना रहता है। जमीन पर रखे सूप को कोई लांगता, उलांगता नहीं है। ऐसी क्रिया खोड़ अथवा अशुभ एवं अमंगलकारी होती है।

मांगीलाल मिस्त्री नहीं रहे

उदयपुर (ह. सं.)। प्रसिद्ध काष्ठशिल्पी कावड़ निर्माता मांगीलाल मिस्त्री (80) के निधन पर सम्प्रति संस्थान ने शोकांजलि दी।

संस्थापक डॉ. महेन्द्र भानावत ने कहा कि 1969 में मिस्त्री से भारतीय लोककला मण्डल में सेवाएं लेकर पारम्परिक मांगलिक काष्ठकलाएं गणगौर, ईसर, वेवाण, मुखौटा, चोपड़ा, कावड़, कठपुतलियां बनवाकर संग्रहालय में प्रदर्शित कीं। कलामंडल ने कठपुतली प्रदर्शन में तो विश्व का प्रथम पुरस्कार ही प्राप्त किया। सेवानिवृत्ति के बाद तो मिस्त्री ने अनेक कावड़ें बनाईं जो देश-विदेश के अनेक संग्रहालयों में शोभित हैं।

अध्यक्ष डॉ. एस. एस. सारंगदेवोत ने मिस्त्री को कुशल शिल्पी बताते कहा कि माचीस से लेकर पांच फीट तक की कावड़ के इस प्रयोगधर्मी ने राजस्थान का गौरव बढ़ाया। उनकी सबसे बड़ी कावड़ पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, उदयपुर में प्रदर्शित है।

सचिव डॉ. तुक्तक भानावत ने कहा कि संप्रत्ति द्वारा समय-समय पर आयोजित समारोह के दौरान जया बच्चन, लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, प्रभाकर माचवे, जगदीशचन्द्र माथुर, कपिला वात्स्यायन, बालकवि बैरागी जैसी हस्तियों को कावड़ें भेंट की। शोकांजलि में संप्रति सदस्यों में डॉ. देव कोठारी, डॉ. कृष्ण जुगनू, किशन दाधीच, डॉ. कहानी भानावत, जितेन्द्र मेहता, राजेन्द्र वीरानी, शूरवीरसिंह भाणावत, राजेन्द्र पालीवाल ने भी विचार व्यक्त किये।

चिम्पेंजी और हवाई जहाज

-डॉ. अनिरूद्ध पुरोहित-

एक बार एक हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया। उसमें बैठे हुए सभी व्यक्ति मारे गए। केवल एक चिम्पेंजी बच गया। उसे मनुष्य की आवाज समझ हाथों से ईशारा करके जवाब देने का प्रशिक्षण दिया गया।

इसके बाद उससे पूछा गया कि जब हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त हुआ, उससे पहले यात्री क्या कर रहे थे। उसने हाथों से ईशारा करते हुए बताया कि वे सो रहे थे।

इसके बाद पूछा गया कि ऐयर होस्टेजेज क्या कर रही थीं? उसने हाथों से ईशारा करते हुए बताया कि वे सो रही थीं। पायलट क्या कर रहा था? उसने हाथों से ईशारा करते हुए बताया कि वह सो रहा था।

तुम क्या कर रहे थे? उसने हाथों से ईशारा करते हुए बताया कि वह हवाई जहाज चला रहा था।

शरीर को मस्तिष्क जैसे चालक द्वारा ढंग से चलाना होता है। सेरीब्रल पाल्सी नामक दशा से प्रभावित बालक में यह चालक विकृत हो जता है। वह चिम्पेंजी की तरह की सोच से इस शरीर रूपी हवाई जहाज को चलाने लगता है। अत: हाथ पांवों के कार्य असाधारण हो जाते हैं। उनमें संतुलन समन्वय आदि बिगड़ जाने से उनकी गतियां बिगड़ जाती हैं। अत: वे सही प्रकार से उठ-बैठ या चल नहीं पाते हैं।

ध्यान प्रशिक्षण

ध्यान के लिए आराम से बैठें और यह सोचें कि आपके ह्रदय में ईश्वरीय प्रकाश विद्यमान है। मन पर जोर डाले बिना सहज और स्वाभाविक तरीके से ऐसा करें। यदि आपको वहां प्रकाश दिखाई नहीं देता तो इसकी चिन्ता ना करें। एक आसन में बैठकर केवल प्रकाश का विचार लेना है और सहजता के साथ अपना ध्यान ह्रदय की ओर मोड़ लेना है। उस समय मन में उठने वाले विचारों पर ध्यान ना दें।

यदि आपका मन इधर-उधर भटके, तो धीरे से अपना ध्यान ह्रदय की ओर ले आयें। आधा घण्टे से लेकर एक घण्टे तक ध्यान करें। ध्यान के दौरान अगर आप आसन बदलना चाहें तो बदल सकते हैं ताकि आपका शरीर ध्यान के दौरान किसी तरह की अड़चन पैदा न करें।

आधे घण्टे के लिए उसी तरह बैठें जैसे कि ध्यान के समय बैठते हैं। खुद को यह सुझाव दें कि सारी जटिलताएं और अशुद्धियां हमारी सम्पूर्ण सरंचना से पीठ की ओर से धुएं के रूप में बाहर निकल रही हैं। उसके स्थान पर दिव्य धारा आपके ह्रदय और शरीर की हर एक कोशिका में प्रवेश करते हुए आपको पवित्रता से भर रही है।

यह एक सक्रिय पर हल्के से की जाने वाली प्रक्रिया है जिसमें हम अपने मन पर अंकित छापों को हटाने के लिए इच्छा शक्ति का प्रयोग करते हैं। जिन चीजों को आप हटाना चाहते हैं उन पर मनन न करें। केवल उन्हें झाड़दें। इस दृढ़ विश्वास के साथ सफाई को समाप्त करें कि वह अच्छी तरह से पूरी हो गई है और पवित्रता ने आपके सम्पूर्ण अस्तित्व को भर दिया है।

ध्यान के दौरान हुए अनुभवों को डायरी में लिखना चाहिए। डायरी प्रतिदिन लिखनी चाहिए और उसमें अपने अभ्यास, अनुभव, मनोदशा और बदलाव आदि के बारे में लिखना चाहिए। इससे हम अपनी स्थिति व प्रगति के बारे में स्वयं मूल्यांकन कर सकेंगे। हार्टफुलनेस संस्था विश्व के 160 देशों में मानव मात्र के आत्मिक विकास के लिए अपनी सेवाएं दे रही हैं। ध्यान के प्रशिक्षण और सहायता के लिए हमारे प्रशिक्षकों की सेवाएं नि:शुल्क उपलब्ध हैं।

- मुकेश कलाल, आर.ए.एस
मो. 9166550509

शब्द रंजन

उदयपुर, सोमवार 02 अक्टूबर 2023

सम्पादकीय

वंदनीय भारत राष्ट्र महान

कुछ राजनैतिक दलों में अपना अस्तित्व कायम रखने का कोई ठोस आधार नहीं होता पर हो-हल्ला करने में माहिर होते हैं ताकि अपनी आवाज को बुलन्द कर सकें। भारत बनाम इंडिया भी ऐसा ही शगूफा है। बरसाती मेढ़क की तरह इसकी टर्र-टर्र अभी अपनी रफ्तार तेज किये है और फिर शान्ति हो जाएगी।

वैसे आजादी के पहले से देखा जाय तो जितने भी महान लेखक हुए हैं उन्होंने सदैव अपने देश को भारत और धरती को भारतमाता कहकर गुणानुवाद किया है। इंडिया किसी की कलम या कि जबान पर नहीं सुना गया। हां, एक समय वह अवश्य आया जब इन्दिरा इज इंडिया का नारा सुनाई दिया गया जिसका हश्र हमने देख लिया। यह हमारी मानसिक गुलामी का प्रतीक है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने तो गुलामी के दिनों में ही 'भारत भारती' लिखकर बहुत कुछ भारत देश का गुण-गौरव वर्णित किया।

हम कौन थे? क्या हो गये? और क्या होंगे अभी?
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।।

लिखकर सबकुछ वर्णित कर दिया। उनकी लिखी ये पंक्तियां आज भी हमारे लिए प्रेरणा का सबब बनी हुई हैं। तुलना करें उस काल से आज के काल की तो पता चलेगा, हमारा भारत राष्ट्र किस तरह आज विश्वपटल पर अपनी अहमियत रखता है।

गुप्तजी ने तो एक अन्य गीत में यह भी लिख दिया-

जय-जय भारतमाता
तेरा बाहर भी घर जैसा, रहा प्यार ही पाता।।

और अन्त में लिखा-

तेरे प्यारे बच्चे हम सब, बंधन में बहुबार पड़े।
किन्तु मुक्ति के लिए यहां हम, कहां न जूझे कब न लड़े?
मरण शान्ति का दाता है तू, भारत भाग्य विधाता।।

'भारत भाग्य विधाता' तो हमारे राष्ट्रगान में भी है। इसमें जन गण मन को जिस बेहतरीन खूबसूरती के साथ परोसा गया है, वह बेमिसाल ही है-

'जन गण मन अधिनायक जय है, भारत भाग्य विधाता।'

और 'कामायनी' के महाकाव्यकार जयशंकर 'प्रसाद' ने लिखा-

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
.... स्वतंत्रता पुकारती।

'भारत गांवों का देश है' उक्ति को चरितार्थ करते प्रकृति के बेजोड़ कवि सुमित्रानन्दन पंत ने लिखा- 'भारतमाता ग्रामवासिनी।' और यह कथन-

'अहा ग्राम्यजीवन ही क्या है?
क्यों न इसे सबका मन चाहे।
थोड़े में विश्राम यहां है।
ऐसी सुविधा और कहां है?'

उस काल के कवियों से लेकर आजादी के बाद आज तक अपनी भारतमाता के गुणगान में अनगिनत लोगों ने जुदा-जुदा ढंग से लिखा है। यह लोकतंत्र है। जनगणतंत्र है। हम सबको मिलकर इस तंत्र की रक्षा करते उसके उन्नयन एवं विकास में अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार आहुति देनी है, संकल्प के साथ ताकि हम चांद को धरती पर ला सकें। गुप्तजी ने ठीक ही लिखा-

सन्देश नहीं मैं यहां स्वर्ग का लाया।
इस धरती को ही स्वर्ग बनाने आया।।

आइये, हम सभी मिलकर एक से करोड़ों बन अपने भारत और भारतमाता को विश्व गुरु के आसीन पर प्रतिष्ठित करें।

गांधीजी की विरासत के वैभव संजय अग्रवाल का अभिनंदन

उदयपुर (ह. सं.)। गांधी जयंती की पूर्व संध्या पर लोकजन सेवा संस्थान द्वारा संजय प्रताप नारायण अग्रवाल का अभिनंदन कर उन्हें 'लोकजन गांधी विरासत संरक्षण विभूति' अलंकरण प्रदान किया गया। समारोह की अध्यक्षता डॉ. महेन्द्र भानावत ने की। संस्थान के संस्थापक जयकिशन चौबे ने संजय अग्रवाल को शॉल एवं अध्यक्ष प्रो. विमल शर्मा और डॉ. भानावत ने प्रशस्तिपत्र प्रदान किया।

इस अवसर पर प्रो. संजय अग्रवाल ने अपने परिवार सहित आगन्तुकों का स्वागत करते हुए बताया कि वे अपनी दादी महात्मा गांधी द्वारा गोद ली हुई पोती उमिया बेन तथा दादा शंकरलालजी अग्रवाल के पौत्र के रूप में अपने को गौरवशाली गर्वित मानते हैं कि गांधीजी और कस्तूरबा द्वारा प्रदत्त दादी को एक हजार निजी उपहार संरक्षित किये हुए हैं। यह पहला अन्तर्जातीय और अन्तर्प्रांतीय विवाह था जो 04 दिसम्बर 1929 को साबरमती आश्रम अहमदाबाद में हुआ।

समारोह में संस्थान के सदस्य एवं संजय अग्रवाल के मित्रों की उल्लेखनीय उपस्थिति रही।

- विभू नारायण अग्रवाल

सूचना

डॉ. भानावत परिवार का नया निवास 352, श्रीकृष्णपुरा की बजाय फ्लैट नं. 904, आर्ची आर्केड, राम-लक्ष्मण वाटिका के पास, मुनि सुव्रतस्वामी जैन मंदिर परिसर, न्यू भूपालपुरा, उदयपुर है।

आदिवासी भीलों में गवरी नृत्यानुष्ठान

-डॉ. तुक्तक भानावत-

गवरी : भीलों में शिव-पार्वती को धरती पर बुलाने का नृत्यानुष्ठान है।

यह उदयपुर खंड में निवास कर रहे आदिवासी भीलों का गौरी को आदिदेव महादेव सहित अपने आंगन में आमंत्रित करने का लोकरंगा उत्सव है। रक्षाबंधन के दूसरे दिन ठंडी राखी से प्रारंभ कर प्रत्येक अभिनेता खेल्या जहां-जहां भीलों की बहिन-बेटी ब्याही होती है, वहां-वहां इसके प्रदर्शन देता है। गांव-दर-गांव इस तरह पूरे चालीस दिन गवरी खेली जाती है। गांव का कोई तिराहा, चौराहा या मंदिर प्रदर्शन स्थल बन जाता है। सुबह से शाम तक गवरी चलती रहती है। गांव की खुशहाली, सुकाल तथा सर्व मंगल, सर्व सुख की बढ़ोतरी ही गवरी प्रदर्शन का मुख्य उद्देश्य है।

इसका नायक बुड़िया तथा नायिका राई कहलाती है। बुड़िया शिव तथा भस्मासुर का प्रतीक एवं राइयां शक्ति एवं पार्वती रूपा होती हैं। सभी पुरूष पात्र होते हैं जो पूरे काल तक गवरीमय बने रह एक समय भोजन करते हैं। मद्य, मांस तथा लीलोती यानी हरी सब्जी आदि से दूर रहते हैं। न नहाते हैं, न पांव में जूते पहनते हैं। आंगन में सोते हैं और आदिदेव महादेव तथा देवी गवरजा की आराधना में लगे रहते हैं।

कुल 40-50 तरह के सांग होते हैं जो बारी-बारी से अदलबदल कर नाना खेल तमाशे तथा लीलावलियों द्वारा राहगीरों का खासा मनोरंजन करते हैं।

खोज की पगडंडियां निरंतर बढ़ती रहती हैं। गवरी से जुड़ी शिव-भस्मासुर की कथा भागवत पुराण, शिव पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि में भी बखूबी उल्लेखित है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के प्रकृतिखंड में नायक शंखचूड़ का उल्लेख मिलता है। यही चूड़ धीरे-धीरे बूड़ के रूप में परिवर्तित होता गवरी में बुड़िया बन गया लगता है।

यह खासा अध्ययन का विषय है कि चौथी शताब्दी में उदयपुर के आसपास का इलाका मंदिर-संस्कृति का पूर्ण वैभव लिए था। यहां का उबेश्वर मंडल मंदिरों के माहात्म्य का जीताजागता स्थल रहा जहां गौरीतांडव नृत्य ने अपनी प्रसिद्धि फैला रखी थी। जब इस संस्कृति का लोप होता दिखाई दिया तब मंदिर रक्षक भक्तों ने इसे लुप्त होने से बचाने का बीड़ा उठा संरक्षण दिया। यह घटना लोक और शास्त्र के बीच चोलीदामन का संबंध व्यक्त करती है। सच है, लोक में जब कोई विधा अपनी परिपक्वता तक पहुंचती है तब उसका शास्त्र निर्मित होता है और जब कोई शास्त्रीय विधा विलुप्ति के कगार पर पहुंचती है तब लोक ही उसका संरक्षक बनता है। गवरी पर पहलीबार अनुसंधान करने का श्रेय डॉ. महेन्द्र भानावत को है जिन्होंने पहलीबार सुखाड़िया विश्वविद्यालय, तब उदयपुर विश्वविद्यालय से 1968 में प्रथम बेच में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

गवरी के प्रत्येक प्रदर्शन के प्रारंभ और अंत में अभिनेता मिलकर गोलाकार नृत्य करते हैं जिसे 'घाई' कहते हैं। गोलाकार पृथ्वी की गोलाई का सूचक है। पृथ्वी के कई नामों में एक नाम गहवरी है जो गवरी का ही द्योतक है। गवरी में देव, दानव, मानव, पशु तथा जलचर पात्रों की अवधारणा मिलती है। मुख्य स्वांगों में शंकऱ्या, कंजर-कंजरी, मीणा, नट, बणजारा, जोगी, कालबेलिया, बाणिया, कानगूजरी, कालूकीर, फत्ता-फत्ती, गोमा, बनवारी, पाईता, बांझड़ी, देवर-भौजाई,चपल्या चोर, हठिया और खेतु हैं। कुटकड़िया कुटकड़ाई कर संवाद का माध्यम बन गवरी को रसमय गति देता है।

लोकजीवन में गवरी राई के नाम से प्रसिद्ध रही। कहा जाता है कि गौरी का एक नाम राई था। भस्म होते भस्मासुर ने शिवजी के साथ अपना नाम अमर रखने की इच्छा प्रकट की थी। इस पर शिवजी ने कहा- ''तुम्हारी याद में जो राई का मंडल रचेगा उसमें स्वांग तुम्हारा और नाम मेरा होगा। उसका जो मुखिया होगा उसकी जटा तथा भगवा मेरा और खांडा व शीश तेरा रहेगा।''

लोकजीवन में राई मथनी को कहते हैं। मुख्य नायिका दोनों राइयां एक जैसे वेश विन्यास में साथ-साथ रहती हैं। जब नृत्य करती हैं तो लगता है जैसे मथनी की तरह फेरे ले रही हैं- उल्टे भी, सीधे भी, सीधे-उल्टे, उल्टे-सीधे, हमश्क्ल में।

गवरी का प्रदर्शन दिनभर सुस्ताते-सुस्ताते ठहर-ठहर कर, लहर-लहर होता है। यह प्रदर्शन पूरा नाट्यरूप है। थाली और मादल का गूंजता गहराता घोष प्रदर्शन में तन्मयता और उसकी संरचना को कसावट दिए रहता है। उसके ओज को उर्ध्वगामी अनुशासन से बांधे रखता है।

गाथा के अनुसार कुम्हार माटी की खोल लाता है। शिवजी उसके दोनों ओर चीते का चमड़ा लगा सर्वथा अनूठी आवाज निकालते हैं- तिंग, तिंग बातिंग, तातिंग। देवगण ताली बजाते हैं। वही ताली थाली बन गवरी के गुंजन को गुंफित किए रहती है।

प्रदर्शनकर्ता अपनी प्रस्तुति को रोचक और सारवान बनाए रखने हेतु नाना संकेतों द्वारा भावाभिव्यक्ति देते हैं। प्रसंग को रमणीय और भावानुकूल परचम देने के लिए नाच की कई-कई भंगिमाएं निकालते हैं। कभी झुकते हुए तो कभी उछाल खाते हुए, कभी लेटते हुए तो कभी दौड़ते, लपकते, उड़ी-गुड़ी खाते, किलकारी भरते, हाक देते नृत्य के करिश्मों से दर्शकों को लोटपोट कर देते हैं।

मादल और थाली से गवरी का पूरा घाई मंडल संचालित होता है। ऊब घाई से शुरू हुई गवरी हिंडोला घाई, आडी घाई, भगमल्या घाई, हणका घाई जैसे रूपों में रमझमाती हुई सांध्यकालीन लालीलछिया में खो जाती है।

मादल वादक मादलिया तंत्र-मंत्र का उस्ताद होता है जो गवरी को विपदाओं से बचाये रखता है। वह मूठ जैसी अनिष्टकारी एवं मारक शक्तियों का बड़ी बहादुरी से मुकाबला करता है। देवी गवरजा अपने प्रतिनिधि भोपे के माध्यम से पूरे प्रदर्शन में उपस्थित रहती है।

गवरी के प्रारंभ में ही राईबुड़िया स्तुति-गान द्वारा सभी देवी-देवताओं के सान्निध्य का आह्वान करता है। अदृश्य रूप में गणेश से लेकर खेडाखूंट, काला-गोरा, लालां-फूलां, मामादेव, राडा-रूपण, खाकल, ताखा, भूणा-मेंदु, लेमच-खेमच, आवरा-एलवा,

गूना-मेनू, कालका, वरेकण, धरमराज, लटकाली, चौथ, पीपलाज आदि देवी-देवताओं की पधरावणी बनी रहती है।

इस प्रकार गवरी की देन कई दृष्टियों से बड़े महत्व की है। आदिवासी कला-संस्कृति के दरसाव के बहाने इसने लोकजीवन से आबद्ध लोकाचारों को लोकमय जीने का सिलसिलेवार सलीका प्रदान किया है।

ध्यान क्यों, क्या.......

(पृष्ठ एक का शेष)

नशे में कुछ पता नहीं चलता। मुंह पर लगाने वाली दवा दर्पण पर लगा दी जाती है। जब मोह प्रबल होता है, चेतना विकृत होती है, तब भी यही स्थिति बनती है। चेतना में जो विकार है, वह मोह के कारण है। मन की गति इतनी तेज है कि जितनी शायद बिजली की भी नहीं है। संकल्प करें- मैं दस मिनिट बिल्कुल स्थिर रहूंगा। हिलूंगा-डुलूंगा नहीं। अचल और अप्रकंप रहूंगा। धीरे-धीरे इस अभ्यास को बढ़ाएं। एक घण्टा-डेढ़ घण्टा स्थिर रहने का अभ्यास सध जाए तो आप मान लें कि आपने मोह के अभेद्य किले पर प्रहार करना शुरू कर दिया है। जैसे-जैसे संयम और स्थिरता सधेगी, मोह कम होना शुरू हो जाएगा। 'मनुष्य क्यों नहीं बदलता'? यह प्रश्न समाहित हो जाएगा। 'मनुष्य बदल सकता है'- इस नए विश्वास और नई आस्था की सृष्टि होगी। रामायण और महाभारत का काल देखें, इतिहास और पुराण जितने आज उपलब्ध हैं, उन्हें देखें तो यह नहीं कहा जा सकता है कि आदमी का चरित्र बदला है और यह भी नहीं कहा जा सकता है कि आदमी बदला नहीं है। राम, महावीर, बुद्ध तथा अनेक बड़े-बड़े आचार्य और महापुरुष हुए हैं जिन्होंने राज्य को त्याग दिया, सर्वस्व छोड़ दिया, अकिंचन जीवन बिताया। उनकी वाणी और संकेत पर लाखों लोग सब कुछ करने को तैयार रहे हैं। इसलिए यह सापेक्ष बात है- आदमी बदलता भी है और आदमी नहीं भी बदलता। दोनों बातें स्पष्ट हैं।

मनुष्य सुख से प्यार करता है, दुःख से द्वेष करता है। वह दुःख से दूर भागना चाहता है। न उसे मौत पसंद है, न बुढ़ापा पसंद है और न रोग पसंद है किन्तु रोग भी आता है, बुढ़ापा और मौत भी आती है। यह प्राणी की मनोवृत्ति है कि वह मौत से डरता है। उसे थोड़ा सा कुछ हो जाता है तो वह तत्काल डाक्टर और दवा की शरण लेना चाहता है। रोग न आए, बुढ़ापा न आए, उसके लिए न जाने कितना प्रयत्न करता है। बुढ़ापे का पहला लक्षण है- केश सफेद होना। जो व्यक्ति सुख स्वादक है, निरन्तर चाहता है कि सुख मिले, साता मिले, आराम मिले, कहीं कोई कष्ट न आए, इस प्रकार की भावना वाला व्यक्ति कभी बदल नहीं सकता। वह अधिक विकृत स्वभाव की ओर चला जाता है। राम जैसे शक्तिशाली व्यक्ति के सामने राज्य का कोई प्रश्न ही नहीं था किन्तु राम राग से विराग की कक्षा में चले गये। भूमिका बदल गई। उनमें शम का स्थायी भाव प्रधान था, शोक का स्थायी भाव प्रधान नहीं था इसलिए संघर्ष नहीं हुआ। दूसरी स्थिति सामने आई। राम ने कहा- मैं राज्य नहीं लूंगा। भरत ने कहा- मैं राजा नहीं बनूंगा।

- ध्यान क्यों? से साभार

सांझीकला में......

(पृष्ठ दो का शेष)

पर्यावरण-संस्कृति की दृष्टि से भी सांझी का महत्व कम नहीं है। फूल, पत्ते, गोबर और आधार रूप में चौक बनाने के लिए जो गोबर मिश्रित पीली मिट्टी, गेरू अथवा हड़मची काम में ली जाती है वे सब शुद्ध पर्यावरण के पोषक हैं। इनसे प्रदूषित वातावरण शांत होता है और जीवन को नई चेतना एवं स्फूर्ति मिलती है। सबसे मुख्य बात तो यह है कि हमारी संस्कृति के जितने भी सरोकार हैं उन सबकी प्राथमिक जानकारी और उनके निर्वहन की जो प्रक्रिया है उससे बालिकाओं का सांझी के माध्यम से बड़ा ही सुंदर परिचय और सुखद प्रशिक्षण हो जाता है।

गृहस्थ जीवन में रहते हुए कैसे किसी धार्मिक और सामाजिक अनुष्ठान की मनौती करना, देवी-देवताओं की कैसे पूजा-अर्चना करना, कैसे फूलों को चूंटना, पत्तों को चुनना, दीवार पर गोहली देना, गोबर से आकृतियां उभारना, गीत गाना, प्रसाद बांटना और सामूहिक उल्लास में अपनी भागीदारी को बनाये रखकर सबके लिए सुख, समृद्धि और मंगल की कामना करना, सबके साथ सामंजस्य बिठाते हुए सौहार्द बांटना, ये सब ऐसे प्रसंग हैं जो किसी भी परिवार के लिए बहुत जरूरी हैं।

संझ्या के अंकन में कुंवारे-कुंवारी जहां कौमार्य जीवन के महत्व को अंकित करते हैं वहां नवमी को डोकरे-डोकरी के अंकन बूढ़ों के प्रति सम्मान भाव को दर्शाते हैं। इनका एक भाव यह भी है कि जिन कुंवारे-कुवारियों अथवा बूढ़े-बूढ़ियों का निधन हो गया है उन सब का भी सविनय स्मरण कर उन्हें श्रद्धांजलि दी जाय, इसलिए इन दिनों की तिथियों में पंचमी को कुंवारी पांचम, नवमी को डोकर्या नम कहा गया है। इसके अलावा सप्तमी को हत्यारी सातम नाम दिया गया है। इस दिन की सांझी में एक ऐसे वीर की आकृति उभारी जाती है जिसकी मृत्यु किसी के द्वारा हत्या करने से हो गई है अथवा वह स्वयं ही अपनी आत्महत्या कर अपने प्राण गंवा बैठा है।

इन अंकनों के पीछे मूलतः उस भावना की प्रतिष्ठा है कि कोई चाहे किसी रूप में मृत्यु को प्राप्त हुआ हो, अकाल मृत्यु हो, प्राकृतिक मौत हो या कि हत्या अथवा आत्महत्या हो, उन सब मृत्युधारियों का स्मरण किया जाय। ये मृत आत्माएं अशरीरी मानी जाती हैं और जो अदृश्य होती हैं और बिना मान-सम्मान एवं प्रतिष्ठा के भटकती रहती हैं। इसीलिए वर्ष में एकबार श्राद्धपक्ष में इनका आह्वान कर इन्हें धूप-ध्यान किया जाता है ताकि ये पूर्णरूप से तृप्त हो सकें। सांझी में भी इन्हें स्मरण करने का यही श्रद्धा भाव है। यह भाव नई पीढ़ी को उस पुरानी पीढ़ी से जोड़ने का भी है जिसे इन बालिकाओं ने देखा है।

इस प्रकार राजस्थान से प्रारंभ हुई सांझी अन्य प्रांतों में ब्याही गयी महिलाओं के साथ एक धरोहर के रूप में वहां की आंचलिकता को ग्रहण करती हुई बालिकाओं में पर्वोत्सव के रूप में मान पाती गई। कला, संस्कृति, जीवन परिवेश तथा कई अन्य कारणों से एक प्रांत की कला तथा संस्कृति अन्य प्रांतों में सदियों से दूर-सुदूर अपना प्रभाव दिखाती है और न जाने किन-किन रूपों में सांस्कृतिक बोध को स्थापित करती है। इस दृष्टि से सांझी एक पारदर्शी जीवनधर्मिता से ओतप्रोत समसामयिक परिस्थितिजन्य पारदर्शिताओं को ग्रहण करती हुई अनेक मिथकों से महिमावान बनी हुई है।

संदर्भ सूत्र :

1. सांझी कला, डॉ. कहानी भानावत, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 45
2. निमाडी और उसका लोकसाहित्य, रामनारायण उपाध्याय, उषा प्रकाशन गृह, ललितपुर (झांसी), 1964, पृ. 64-65
3. बिखरे रंग निमाड़ के, बसंत निरगुणे, लोकरंग, 2 शंकरगंज इंदौर, 1976, पृ. 22 और 26
4. हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य, डॉ. शंकरलाल यादव, पृ. 238
5. मिथिला की सांझी, डॉ. प्रफुल्लकुमार सिंह 'मौन', भारतीय लोककला मंडल, उदयपुर से प्रकाशित रंगायन, मासिक, संपादक डॉ. महेन्द्र भानावत, नवंबर 1975, पृ. 5
6. सांझी कला, डॉ. कहानी भानावत, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 47
7. राजस्थान की संझ्या, डॉ. महेन्द्र भानावत, भारतीय लोककला मंडल, उदयपुर, पृ. 9 से 14
8. राजस्थान की संझ्या, डॉ. महेन्द्र भानावत, भारतीय लोककला मंडल, उदयपुर, पृ. 48

लक्ष्मीजी का व्यवहार

- रमेश 'मयंक'-

धर्म समझाता
यज्ञ, दान, तप, कर्म अपनाने योग्य है
त्यागने योग्य नहीं
ये संस्कार बुद्धिमानों को पवित्र करते,
देश-काल-पात्र को देखकर
सात्विक-भाव भरते।
अर्जन और व्यय
लक्ष्मीजी के व्यवहार
संतुलन के आधार, अर्जित धन को
जिस प्रकार खर्च कर पाते,
वही धर्म-अधर्म, लाभ-हानि, पाप-पुण्य के
आधार बन जाते।
लक्ष्मीजी की कृपा से कमाया हुआ धन
पवित्र मन से घर-परिवार
समाज-पुण्य, उचित कार्य
संस्कार पर व्यय किया जाता तो
''श्री'' कम नहीं होती,
नहीं पड़ता पाप का प्रभाव
यही दान देने का भाव।
लक्ष्मी-विद्या ज्योति है
अविद्या तम आसुरी वृत्ति
जो ज्योति को छोड़कर
आसुरी वृत्ति अपनाते हैं
रोग-शोक-भ्रांतियों के घेरों को
तोड़ नहीं पाते हैं,
अंधकार आच्छादित-अनैतिक
व्यापार लूट से पाप संग्रह करते जाते
धन की तीन गतियों
दान भोग नाश की गहराई तक
सोच भी नहीं पाते।
दान देना सिखाएगा
भोग लेना सिखाकर
स्वार्थी बनाएगा,
जब हम देंगे नहीं तो वापस
लौटकर क्या आयेगा?
ज्योति के आलोक में
वित्त सम्प्रति सम्पदा के साथ
जब यश कीर्ति जुड़ जाती,
पवित्र आत्मा का निवास कहलाती,
और तिमिर लोक में
आसुरी वृत्तियां सात्विक कर्म के
अभाव में धन नाश की गति से
नहीं बच पाती है।

पुरानी प्रेमिका

तजारे के दाने की तरह
रुणक झुणक
मेरे कागज पर कविता सी
खिलती, खेलती, खिलखिलाती
उतर आती हो तुम लूमा झूमा।
अंगुराये बदन सी आई थी
गूंदे सी, रस से सनी
अब दाख हुई देख रहा हूं
साख बढ़ गई है तुम्हारी।
तुम आज भी पवनचक्की की तरह
फर्राटे खाती
जोशीली, उत्साहमय लगती हो।
हवा की गंध वही है
खटारा नहीं हुई है
मगर हवन से निकली सुगंध सी
दवा बन गई हो मेरे दर्दे दिल के लिए।
पुरानी प्रेमिका
ग्यारसी घोड़े की तरह मिलती है
पहले से अब ज्यादा
सहमी-सहमी सी
बेटा बड़ा हो गया है बहू आ गई है
और पोते-पोती घेरे रहते हैं
दादी पर सबका अंकुश चढ़ गया है
बिच्छू के जहर की तरह।
लहलहाते खेत पर
बाड़ अच्छी लगती है
मगर रामजी के घोड़े को
कौन रोक पाता है?
कीट कितना छोटा बन
प्रवेश कर जाता है फसल में
कहां से कैसे आता है?
गोफण तोते उड़ाता रह जाता है
तोती को पता भी नहीं चलता
कि कब उसके कंठी निकल आई है।
प्रेमिका पुरानी हो या नई
प्रेम में नया पुराना कुछ नहीं होता
समुद्र ठाठे मारता रहता है
नदी अविराम विलीन होती रहती है।

- डॉ. महेन्द्र भानावत

पोथीखाना

राजस्थान के जहाज पर पुस्तक उष्ट्रशास्त्रम्

संस्कृत कवियों ने ऊंट की बड़ी हंसी उड़ाई है। मरुभूमि के निवासी उसके महत्त्व को जानते हैं। वह कृषि, व्यापार, संदेश प्रेषण, युद्ध, आवागमन आदि अनेक कार्यों में बड़ा सहयोग करने वाला प्राणी रहा है। रायका, रेबारी समुदाय की पहचान ही इस प्राणी से है। यह राजस्थान का राज्य प्राणी रहा है।

राजस्थान वस्तुतः ऊंट पालन के लिए जाना जाता है। क्या यहां ऊंटों की चिकित्सा के लिए कोई कोई शास्त्र विकसित हुआ?

ऊष्ट्रायुर्वेद, ऊंट चिकित्सा जैसे नाम होने चाहिएं। ब्रह्मपुराण में अनेक वैद्यों के नाम हैं -नरवैद्य, गजवैद्य, हयवैद्य, गोवैद्य, ऊष्ट्रवैद्य...। क्या कोई ऊष्ट्रायुर्वेद भी लिखा गया? नाम और संदर्भ तो मिलते हैं। प्राच्य विद्या में ऐसी कोई पांडुलिपि है? नहीं। गवायुर्वेद, गजायुर्वेद, अश्वायुर्वेद तो तैयार है।

इसीलिए उष्ट्र शास्त्र तैयार किया डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' ने। वाराणसी के चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस ने इसका प्रकाशन किया है। इस ग्रंथ की भूमिका बहुत विस्तृत है और वेदों, उपनिषदों, पुराणों आदि में पशुओं के संदर्भों को चुन चुन कर बुनी गई है। इसके बाद ऊंटों के बारे में विस्तार से विमर्श है और फिर उष्ट्र शास्त्र। मंगलाचरण से लेकर सूक्ति, ऊंटों के भेद, ऊंटों का जीवन, रूग्ण ऊंटों की चिकित्सा और प्रायश्चित जैसे विषय बहुत रोचक और उपयोगी हैं। कई सूक्तियों से ऊंट की प्रशंसा की गई है -

कण्टकक्षेणिताऽऽस्येन पृष्ठेन भारवाहकः।
चरणैर्मरुभूगन्ता क्रमेलो हितपाठकः।।

ऊंट को देखिए! अपने मुख से मार्ग के काँटे हटाने वाला, पीठ और कांठी पर बोझ उठाने वाला तथा पैरों से कठिन मरुभूमि पर चलने वाला ऊँट संसार को उपकार में जीवन की सफलता की शिक्षा देने वाला है।

भूमिका से ज्ञात होता है कि ऊंट कहां नहीं? जहाज के प्रदेश में भी रेगिस्तान का जहाज मूर्तियों में मिला है। मरुभूमि के व्यापारियों ने अपने ऊंटाले लश्करों से किस किस प्रदेश को नहीं देखा! कोणार्क से पहले सुदूर दक्षिण तक वे ऊंट पर पहुंचे और व्यापार ही नहीं किया, अपने प्रदेश की विशेषताओं को भी पहुंचाया और बताया। कैसे दक्षिण में रचे ग्रंथों में मरुभूमि का वर्णन हुआ? श्रेष्ठियों, सार्थवाहों के वर्णन क्यों लोकप्रिय हुए? प्रायः अन्य प्रदेशों के ब्राह्मणों का वर्णन भी मिलता है लेकिन व्यापारियों के प्रसंग मरुस्थल के होते हैं। मणिमेखला, अगस्तिमत, रायपसनेई कहा, शिवरत्नाकर, चिदम्बरम आख्या, हालास्य माहात्म्य ही नहीं, दक्षिण के पुराणों में भी मरुस्थल के वर्णन कैसे पहुंचे? ऊंट सवार और ऊंट सवारी शिल्पांकन में भी दिखे।

कूर्मपुराण (2.34.62) में उष्ट्रयान (ऊंट गाड़ी) पर आरूढ़ होने पर प्रायश्चित्त विधान आया है। स्कन्दपुराण (5.3.156.23) में उष्ट्री क्षीर भक्षण से उत्पन्न पाप के चान्द्रायण व्रत आदि से नष्ट होने का विवरण दिया गया है। भविष्यपुराण (1.40.38, 9) में उष्ट्री क्षीर पान पर द्विजत्व से च्युति जैसा वर्णन है। पुस्तक में अनेक प्रकार की सामग्री को संपादित किया गया है।

- डॉ. तुक्तक भानावत

पिछवाई कला पर सुंदर पुस्तक

यह कौतुक का विषय है कि हमारे यहां जितनी कला सूचियां हैं, वे यथा रूप नाथद्वारा में व्यवहार में है। इनमें सबसे ज्यादा चर्चा में रही चित्रकला। इसमें भी पिछवाई चित्रण कला सबसे अधिक जानी मानी है। दुनियाभर में पिछवाई की पहुंच और पहचान है। इस विषय पर हिंदी में बहुत सुंदर कॉफीटेबिल पुस्तक का संकल्प किया जाने माने कलाविद श्रीनर्मदाप्रसाद उपाध्याय ने और उसको साकार किया ब्रज संस्कृति शोध संस्थान के सचिव लक्ष्मीनारायण तिवारी ने। उनके उत्साह की बात ही निराली है। ऐसा काम नाथद्वारा से होना चाहिए था।इसमें श्री अमित अंबालाल ने 'श्रीनाथजी के स्वरूप चित्रांकन का विकास क्रम' लिखा है तो के. तलवार और ट्रीना ल्याओंस ने 'पिछवाई : भगवान कृष्ण हेतु चित्रित देवालयी परदे' लिखकर नई दृष्टि दी है। (श्रीअमनदीप वशिष्ठ ने इस आलेख का अनुवाद किया है) नाथद्वारा में अनेक वैष्णव ग्रंथ भी चित्रित हुए, इसी विषय पर मैंने लिखा। श्री उपाध्याय ने 'नाथद्वारा चित्रशैली' में यह लिखकर सुमेरू सरीखा काम किया : नाथद्वारा शैली ने अपनी स्वतंत्र अस्मिता को कला जगत में स्थापित किया है। विषय उपयोगी प्राचीन और नवीन चित्र ने पुस्तक को प्राणवान किया है। मेरे मित्र श्री ओमप्रकाश सोनी और श्री जितेन्द्र आर. शर्मा के चित्रों का भी उपयोग हुआ, यह एक उपलब्धि भी है।

डॉ. भानावत को पुस्तक भेंट करते डॉ. जुगनू

पुस्तक अति ही सुंदर, सुरंगी, सजी - संवरी प्रकाशित हुई है पुरुषोत्तम मास की पूर्णिमा जैसी! गुड़ खाएं कि गुण गाये! आंखों के आगे सौंदर्य, चित्त चमत्कृत और मन में मोद!

ब्रज संस्कृति शोध संस्थान, वृंदावन द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक की विशेषता प्रकट करती है कि ब्रज भूगोल से कहीं अधिक भावलोक में प्रतिष्ठित हुआ है। जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ ब्रज है। औरंगजेब की धर्मान्धतापूर्ण नीति के चलते सन् 1669-70 ई. के लगभग आचार्य और गोस्वामियों को अपने आराध्य देवविग्रहों के साथ ब्रजभूमि छोड़कर पलायन करना पड़ा।

गोवर्धन पर्वत पर प्रतिष्ठित श्रीगोवर्धननाथजी के विग्रह को ब्रज से राजपूताना ले जाकर स्थापित किया गया जिनकी ख्याति अब श्रीनाथजी के रूप में है। जहाँ पिछवाइयों के रूप में विकसित हुई है श्रीनाथजी के स्वरूप चित्रांकन की अद्भुत कला परम्परा, जिसमें चित्रित हुए हैं मन्दिरों के उत्सव, मनोरथ, गऊ ,ग्वाल, गोपी, वन ,उपवन, सरोवर, यमुना, ब्रज और ब्रज लीलाओं का भव्य कलालोक! यह सच्चे अर्थों में ब्रज की प्रतिनिधि चित्रशैली है, जो ठाकुरजी की सेवा के दिव्य भावलोक से जन्मी है।

- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

बाजार / समाचार

राजभाषा पखवाड़ा समापन समारोह आयोजित

उदयपुर (ह. सं.)। राजभाषा पखवाड़े का आयोजन 14 से 29 सितंबर तक क्षेत्रीय कार्यालय कर्मचारी राज्य बीमा निगम, उदयपुर में किया गया। समापन समारोह के मुख्य अतिथि लोककलाविद् डॉ. महेंद्र भानावत थे। अध्यक्षता उप निदेशक (प्रभारी) राजीव लाल ने की। मंत्री श्रम एवं रोजगार, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार भूपेंद्र यादव से प्राप्त संदेश का राम कृष्ण मीणा, राजभाषा अधिकारी द्वारा वाचन किया गया। रामेश्वर तेली राज्य मंत्री, श्रम एवं रोजगार, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस से प्राप्त संदेश का वाचन बाबूलाल मीणा, सहायक निदेशक एवं निगम महानिदेशक की अपील को कमलेशकुमार मीणा, सहायक निदेशक द्वारा वाचन किया गया।

उप क्षेत्रीय कार्यालय उदयपुर की पत्रिका मेवाड़ दर्पण का विमोचन भी मुख्य अतिथि एवं निगम अधिकारियों द्वारा किया गया। डॉ. महेंद्र भानावत ने राजभाषा हिंदी के महत्त्व के साथ- साथ भारतीय लोकसंस्कृति एवं लोककथाओं की गहन व्याख्या प्रस्तुत की। विभिन्न हिंदी प्रतियोगिताओं के विजेता प्रतिभागियों को पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र वितरण किया गया। संचालन वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी प्रदीप गुनावत द्वारा किया गया।

मोटोरोला एज 40 नियो के लॉन्च की घोषणा

उदयपुर (ह. सं.)। भारत में 5जी स्मार्टफोन के सर्वश्रेष्ठ ब्रांड, मोटोरोला ने फ्लिपकार्ट की द बिग बिलियन डेज़ सेल से पहले अपने स्मार्टफोन्स पर अब तक की सबसे कम कीमत के साथ भारी डिस्काउंट की घोषणा की है। ग्राहक 28 सितंबर शाम से मोटोरोला एज, मोटो जी और मोटो ई सीरीज़ के ज्यादातर स्मार्टफोन को फेस्टिव स्पेशल बिलियन डेज़ सेल प्राइस पर खरीद सकते हैं। इसके अलावा, बिग बिलियन डेज़ स्पेशल स्मार्टफोन मोटोरोला एज 40 नियो भी पहली बार सीमित समय के लिए फेस्टिव स्पेशल प्राइस पर उपलब्ध है, जिसका लोगों को बेसब्री से इंतजार था और इस स्मार्टफोन के 8+128 जीबी की कीमत 19,999 रुपये तथा 12+256 जीबी वेरिएंट की कीमत और 21,999 रुपये होगी।

बिग बिलियन डेज़ के सबसे खास स्मार्टफोन मोटोरोला एज 40 नियो दुनिया का सबसे हल्का आईपी68 रेटेड 5जी स्मार्टफोन होने के साथ-साथ दुनिया का पहला ऐसा स्मार्टफोन भी है, जिसमें बिजली से भी तेज मीडियाटेक डिमेंसिटी 7030 प्रोसेसर लगाया गया है, जो ग्राहकों के लिए पहली बार 19,999 रुपये (बैंक ऑफर के साथ) की शानदार कीमत पर बिक्री के लिए उपलब्ध है। इस डिवाइस में 10-बिट बिलियन कलर्स के साथ इस सेगमेंट का पहला 144एचजेड 6.55 कर्व्ड डिस्प्ले मौजूद है। मोटोरोला एज 40 नियो अत्याधुनिक टेक्नोलॉजी और पैसा वसूल पेशकश का बेहतरीन तालमेल है। यह स्मार्टफोन सूथिंग सी, कैनेल बे और ब्लैक ब्यूटी जैसे अपने पैनटोन क्यूरेटेड ट्रेंड-सेटिंग रंगों के साथ किसी का भी ध्यान अपनी ओर खींच सकता है।

एलजी का नया वाई-फाई कन्वर्टिबल साइड बाय साइड रेफ्रिजरेटर लॉन्च

उदयपुर (ह. सं.)। भारत के अग्रणी कंज्यूमर ड्यूरेबल्स और एयर कण्डीशनर ब्राण्ड एलजी इलेक्ट्रॉनिक्स इण्डिया ने अपने क्रांतिकारी वाई-फाई कन्वर्टिबल साइड बाय साइड रेफ्रिजरेटर को लॉन्च किया है।

इस लांच के साथ ही निश्चित तौर पर यूजर्स का एक्सपीरिएंस बदलेगा साथ ही वे इसे अपने अनुसार कनवर्ट कर सकेंगे। एलजी इलेक्ट्रॉनिक्स के होम अप्लायंसेज और एयर कण्डीशनर्स के निदेशक ह्योंग सुबजी ने कहा कि 2023 वाई-फाई कन्वर्टिबल साइड बाय साइड रेफ्रिजरेटर रेंज वर्तमान में 9 मॉडल के साथ पेश किए गए हैं। यह मैट और ग्लास दोनों फिनिश में उपलब्ध हैं, जो क्रोम-फिनिश वाले दरवाज़े के हैण्डल और अन्दर उत्कृष्ट धातु सजावट के साथ पूर्ण हैं। रेफ्रिजरेटर मॉडल 650 लीटर की क्षमता के साथ उपलब्ध होंगे। विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने वाले इनोवेटिव सॉल्यूशन्स प्रदान करने की एलजी की प्रतिबद्धता के हिस्से के रूप में, वाई-फाई कन्वर्टिबल साइड बाय साइड रेफ्रिजरेटर रेंज की कीमत 122,999 रुपए से 152,999 रुपए तक होगी। एलजी वाई-फाई कन्वर्टिबल साइड बाय साइड रेफ्रिजरेटर घरेलू उपकरणों में इनोवेशन और सुविधा के प्रति हमारी प्रतिबद्धता का प्रमाण है। एलजी थिनक्यू ऐप के माध्यम से दूर से संचालित होने की क्षमता के साथ, यह रेफ्रिजरेटर लचीलेपन और नियंत्रण के एक नए युग की शुरुआत है।

ओरिएंटेशन और व्हाइट कोट समारोह आयोजित

उदयपुर (ह. सं.)। गीतांजली मेडिकल कॉलेज और हॉस्पिटल में 2023-24 बैच के नव प्रवेशित एमबीबीएस छात्रों के लिए ओरिएंटेशन कार्यक्रम और व्हाइट

कोट समारोह का आयोजन किया गया। समारोह में कार्यकारी निदेशक अंकित अग्रवाल, कुलपति डॉ. एफ. एस. मेहता, डीन डॉ. संगीता गुप्ता, एडिशनल प्रिंसिपल डॉ. मनजिंदर कौर, मेडिसिन निदेशक डॉ. डी. सी. कुमावत, प्रिंसिपल पैरामेडिकल जी. एल डाड साइंसेज के साथ विभिन्न विभागों संकायों के प्रमुख और छात्रों के माता-पिता उपस्थित थे।

एसोसिएट प्रोफेसर डॉ. संगीता चव्हाण ने स्वागत भाषण दिया। डॉ. संगीता गुप्ता ने छात्रों का गर्मजोशी से स्वागत किया और कॉलेज की सुविधाओं की जानकारी दी। डॉ. मनजिंदर कौर ने एमबीबीएस पाठ्यक्रम, नियमों और विनियमों, डॉ. अरविंद यादव ने एंटी रैगिंग गतिविधियों, डॉ. मोनाली सोनवणे ने मेंटरशिप प्रोग्राम की जानकारी दी। इस अवसर पर सभी छात्रों को सफेद कोट वितरित किया गया।

औदीच्य समाज के प्रतिनिधियों ने की खोड़निया से मुलाकात

उदयपुर (ह. सं.)। औदीच्य समाज के विभिन्न गांवों के प्रतिनिधि मंडल ने एआईसीसी के सदस्य और पूर्व राज्यमंत्री दिनेश खोड़निया से सागवाड़ा कांग्रेस कार्यालय में मुलाकात की। सागवाड़ा कांग्रेस ब्लॉक अध्यक्ष धीरज मेहता के नेतृत्व में नई सहस्त्र औदीच्य टोलकिया समाज डूंगरपुर, बाँसवाड़ा और उदयपुर के समाजबंधुओं ने खोड़निया से मुलाकात कर समाज के लिये उदयपुर शहर में ज़मीन आवंटन की माँग की।

अध्यक्ष धीरज मेहता ने बताया कि औदीच्य समाज उदयपुर संभाग में बड़ा समाज है। ऐसे में सामाजिक गतिविधियों बच्चों के अध्ययन के लिए उदयपुर में ज़मीन की आवश्यकता है। खोड़निया ने कहा कि मुख्यमंत्री अशोक गहलोत तक जो बात पहुँचाई जा रही है, वे सभी काम हो रहे हैं। खासकर मेवाड़ और वागड़ से मुख्यमंत्री का विशेष लगाव है। ऐसे में यहाँ से विकास कार्य के लिए जो भी बात रखी जाती है पूरी की जा रही है। खोड़निया ने कहा कि चितरी, बडगी, गलियाकोट सहित 11 गाँवों के क़रीब 6000 परिवारों को शुद्ध पेयजल पहुँचाने के लिए योजना को मंज़ूरी मिल गई है। इधर, इन गांवों से आए प्रतिनिधि मंडल ने भी मुख्यमंत्री और खोड़निया का आभार व्यक्त किया। दिनेश खोड़निया ने बताया कि कांग्रेस राज में जिलेभर के कई गांवों को पेयजल योजना से जोड़ा गया है। इन गांवों को फ़िल्टर प्लांट से जोड़ा जाएगा जहाँ से शुद्ध पेयजल घर तक पहुंचाया जाएगा। इस पूरे कार्य पर करीब 23 करोड़ रूपये खर्च होंगे। सागवाड़ा शहर में घर घर तक पेयजल पहुँचाने के लिए 119 करोड़ खर्च कर काम किया जा रहा है। इस दौरान नगरपालिका अध्यक्ष नरेंद्र खोड़निया, सरपंच संघ अध्यक्ष कैलाश रोत, असरार अहमद, जिला परिषद सदस्य हरीश अहारी सहित विभिन्न समाजों के प्रतिनिधि भी मौजूद थे।

यूनाइटेड होटेलिअर्स ऑफ उदयपुर सोसायटी का अवार्ड समारोह सम्पन्न

उदयपुर (ह. सं.)। यूनाइटेड होटेलिअर्स ऑफ उदयपुर सोसायटी द्वारा होटल रघुमहल में अवार्ड समारोह आयोजित किया गया। सोसायटी के अध्यक्ष यूबी श्रीवास्तव, सचिव रूपम सरकार, उपाध्यक्ष देवेंद्र परिहार एवं ट्रेजरार उज्ज्वल मेनारिया ने बताया कि अपनी तरह के इस पहले अवार्ड समारोह में कुल 14 कैटेगरी में होटल्स एवं टूरिज्म से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए विभिन्न वर्गो के कार्य करने वाले वरिष्ठ सदस्यों को उनके अतुलनीय योगदान के लिए सम्मानित किया गया।

समारोह की मुख्य अतिथि सुश्री शिखा सक्सेना ने कहा कि इस तरह का आयोजन राजस्थान में पहली बार हुआ है जिसमें टूरिज्म से जुड़े होटल, ट्रैवल एजेंसी, टूरिस्ट गाइड्स, बस सर्विसेज, राजस्थानी लोककलाओं के प्रोत्साहक, टैक्सी सर्विसेज, ऑटो चालक, रेलवे स्टेशन कुली, हेंडिक्राफ्ट्स, मिनियाचेर पेंटिंग्स, रेस्टोरेंट क्षेत्रों से जुड़े लोगों को सम्मानित किया है।

सचिव रूपम सरकार ने बताया कि गाइड कैटेगरी में कमलसिंह, एम.ए. शेख, के. दास और के.जी. शर्मा। होटल्स में अम्बालाल बोहरा, परविन्दर बुआल, देवराजसिंह जगत और अरूण भटनागर। ट्रावेल एजेन्ट में पृथ्वीसिंह राठौड़, आर. के. सिंह, शक्तिसिंह राठौड़ एवं वीरेन्द्रसिंह राणावत। हेण्डीक्राफ्ट्स में सुनील ढढ्ढा, हेमन्त पेरीवाल और श्याम रावत।

फोक आर्ट्स में लईक हुसैन, दीपक दीक्षित, श्रीमती विजयलक्ष्मी एवं महेश आमेटा। ट्रांसपोर्टेशन में निर्मल पानेरी, ऋषभ जैन एवं भगवतीलाल। पोर्टर में दूधाराम और ओमप्रकाश। रेस्टोरेन्ट में विजय चौहान, रवीन्द्र श्रीमाली एवं दिलीप सिंह। आर्टिस्ट पेंटिंग में जगदीश यादव, कन्हैया शर्मा, किशन सोलंकी एवं गोपाल शर्मा। टेक्सी पायलट में मोईनुद्दीन शेख, देवीसिंह एवं मुन्ना। कोच पायलट में कैलाश नागदा, थाजसिंह एवं लालसिंह। कैफे में एडलवाईज केफे, पुरोहित केफे एवं रेनबो। ऑटो पायलट में विमल कुमावत एवं जसवन्तसिंह तथा मोन्यूमेन्ट्स कैटेगरी में भूपेन्द्रसिंह आवा एवं डीनूला बा को सम्मान प्रदान किये गये।

गणेश विसर्जन का गुलाब रूप में प्रगटीकरण

उदयपुर (ह. सं.)। न्यू भूपालपुरा स्थित आर्ची आर्केड रेजीडेंशियल वेल्फेयर सोसायटी में दस दिवसीय गणपति महोत्सव का समापन कॉम्पलेक्स परिसर में ही उत्साहपूर्वक हुआ। समापन पूर्व पास की कॉलोनियों में जुलूस निकालने के पश्चात एक विशाल सुसज्जित गमले में गणपति बप्पा मोरिया के शंखनाद के साथ गुलाब के पौधे के रूप में प्रगटीकरण किया गया।

महोत्सव समिति की प्रवक्ता रंजना भानावत ने बताया कि समापन की पूर्व संध्या को बप्पा को छप्पन भोग धराया गया जिसके लाभार्थी प्रियंका-वैभव अग्रवाल बने। स्थापना के दिन प्रथम आरती का श्रेय भी इसी दम्पत्ति को मिला। समिति संयोजिका सोनू शर्मा ने बताया कि समारोह में सक्रियता से भागीदारी निभाने में शिल्पा-प्रवीण जैन, नेहा-धवल शर्मा, प्रभा-शत्रुघ्न, कविता-ललित, अंजु-अभय जैन, रीना-विकास कोठारी, रंजना-तुक्तक भानावत, लविना-आनन्द मेहता, लता, मुकेश पटेल, भावना-अर्पण जैन, एकता-हितेष मोगरा, प्रियंका-शिशिर वया, सुशीला-गणेश कोठारी, सोनू- अमित शर्मा, उदिचि-जयेश त्रिवेदी, प्रियंका-मनीष के साथ ही समिति संरक्षक मुकेश कलाल, चेतन जैन, आनन्द मेहता एवं आलोक लसोड़ के नाम उल्लेखनीय हैं। वरिष्ठजनों में डॉ. हरिसिंह मोगरा तथा डॉ. महेन्द्र भानावत की उपस्थिति लगातार बनी रही।

'वाणिज्य शिक्षा : चुनौतियां एवं संभावना' पर राज्यस्तरीय सेमिनार

उदयपुर (ह. सं.)। भारतीय लेखांकन परिषद एवं जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वाधान में 'वाणिज्य शिक्षा : चुनौतियां एवं संभावना' विषय पर राज्यस्तरीय सेमिनार आयोजित किया गया। सेमिनार निदेशक एवं आईआईए के सचिव प्रो. शूरवीरसिंह भाणावत ने स्वागत उद्बोधन में बताया कि राजस्थान में वाणिज्य शिक्षा के गिरते हुए रुझान के कई कारणों में से मूल कारण स्कूल में वाणिज्य विषय को न पढ़ाया जाना है। भारतीय लेखांकन परिषद, उदयपुर शाखा ने पहल की और कक्षा 6 से कक्षा 10 तक का वाणिज्य विषय का पाठ्यक्रम बनाकर स्कूली स्तर से ही वाणिज्य विषय को पृथक रूप से लागू करने का सुझाव राजस्थान सरकार तक पहुंचाने का बीड़ा उठाया।

मुख्य अतिथि सुखाड़िया विवि की कुलपति प्रो. सुनीता मिश्रा ने कहा कि अल्प-अवधि प्रमाण पत्र कार्यक्रम के माध्यम से वाणिज्य शिक्षा की जागरूकता बढ़ाकर रोजगार के अवसर पैदा किया जा सकते हैं। राजस्थान स्टेट हायर एजुकेशन काउंसिल, जयपुर के उपाध्यक्ष प्रो. डॉ. डी. एस. चुंडावत ने कक्षा 6 से ही वाणिज्य विषय को पृथक विषय के रूप में संचालित करने के प्रस्ताव की सराहना की। मुख्य वक्ता प्रो. पी. के जैन ने वाणिज्य शिक्षा में वोकेशनल कार्यक्रम, सॉफ्ट स्किल्स शिक्षण प्रशिक्षण एवं शिक्षण की जगह सीखना गतिविधियों पर जोर दिया। प्रो. के. के. दवे ने कक्षा 6 से कक्षा 10 तक के पाठ्यक्रम समिति द्वारा बनाए गए पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया। राजस्थान विद्यापीठ के कुलपति प्रो. शिवसिंह सारंगदेवोत ने वाणिज्य एवं प्रबंध को एक साथ लाने एवं नवीन तकनीक परिवर्तनों को वाणिज्य के साथ जोड़ने की बात कही। साथ ही वाणिज्य विषय को स्कूल स्तर पर लागू करने पर विचार व्यक्त किए।

खेल-खेल में सृष्टि का विकास और वैभव (1)

- डॉ. पूरन सहगल -

खेल शब्द सहजता और सरलता का प्रतीक है। सृष्टिकर्ता ने सृष्टि की रचना खेल-खेल में ही कर दी। एक समय की बात। भगवान

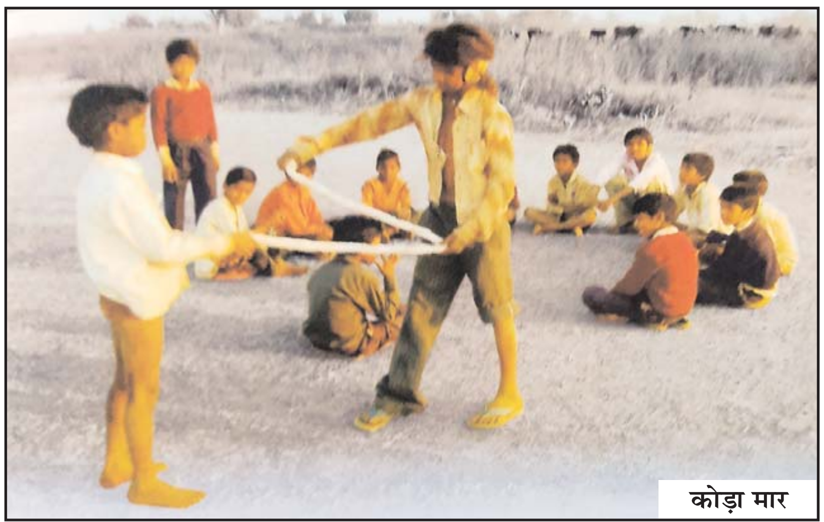
कोड़ा मार

बैठे-बैठे उक्ता गए। तन में शिथिलता आने लगी। मन अकुलाने लगा। उन्होंने सोचा कुछ किए बिना आलस्य और अवसाद दूर नहीं होगा। कुछ कौतुक करना चाहिए। कोई क्रीड़ा करना चाहिए।

भगवान ने मिट्टी का एक ढेर इकट्ठा किया। उससे एक बड़ी गेंद बनाई। उस गेंद में आड़ी-तिरछी लकीरें रखेंची। कुछ उभार बनाए। कुछ खड़ी लकीरें भी खींची। इस प्रकार भगवान ने एक सुंदर भाँतदार गेंद तैयार कर ली। उन्होंने गेंद को अपने दाहिने हाथ की पाँचों अँगुलियों पर स्थापित किया और वहीं पर उसे घुमाने लगे। जब गेंद चक्कर घिन्नी हो गई, तब उन्होंने उसे हवा में उछाल दिया। गेंद जिस गति से घूमती हुई हवा में उछली थी, उसी गति से अधर में रहकर घूमती रही।

भगवान को अपने कौतुक में आनंद आने लगा। उन्होंने एक और बड़ी गेंद बनाई। उस गेंद में उन्होंने अपनी दाहिनी आँख से ज्योति भर दी। गेंद आग के गोले की तरह चमकने लगी। उन्होंने उस गेंद को भी उसी प्रकार अँगुलियों पर नचाकर आकाश में उछाल दिया। वह गेंद भी अधर में टिक गई। उस नई गेंद से पहले वाली गेंद पर ताप और प्रकाश फैल गया। भगवान को इस क्रीड़ा में आनंद आने लगा। उनका तन-मन पुलकने लगा। उन्होंने एक और गेंद बनाई। उसमें उन्होंने अपनी बायीं आँख से ज्योति भर दी। उस तीसरी गेंद में शीतलता थी। प्रकाश भी था। उस गेंद से सबसे पहले वाली गेंद पर शीतलता और प्रकाश का संचार हो गया। भगवान का ध्यान पहले वाली गेंद पर टिक गया। अब वह खूब चमकने लगी थी। भगवान ने सोचा- यदि इस गेंद पर हरियाली होती तो यह और भी सुंदर दिखती।

सितोलिया

सोचना भगवान का और हो जाना हरियाली का। गेंद पर भाँत-भाँत के वृक्ष, लताएँ और दूब उग आई। मन और तन का क्या कहना। भगवान गद्गद् हो उठे। उन्होंने सोचा इन वृक्षों पर और तल पर कुछ जीव होना चाहिए। उन्होंने अपनी सृजन क्रीड़ा को फिर प्रारंभ किया। भाँति-भाँति के पशु-पक्षी बनाकर गेंद पर वृक्षों और तल पर उन्हें सजा दिया। उनमें प्राणों का संचार कर दिया। गेंद के नये रूप को देखकर वे पुलक उठे। उनके नेत्र पुलक जल से भर उठे। भगवान की दाहिनी आँख से एक आँसू गिरा और तल पर गिरकर मोती बन गया। बायीं आँख से आँसू गिरा, वह भी मोती बन गया। धरातल पर गिरते ही उन दोनों चमकीले आबदार मोतियों में परस्पर आकर्षण बढ़ा। दोनों मोती आपस में जुड़े। उनके आपस में जुड़ते ही चारों तरफ नीलाभ ज्योति फैल गई। उससे आकाश की रंगत नीली हो गई। पशु और पक्षियों में स्फूर्ति आ गई। वे चहचहाने लगे। क्रीड़ा-कौतुक करने लगे, वृक्षों पर सुंदर-मीठे फल-फूल उग आए। लताओं में सुगंधित फूल खिल उठे। हवा सुगंधित होकर बहने लगी। फूलों पर भँवरे-तितलियाँ गुँजार-क्रीड़ा करने लगे। गेंद की आड़ी रेखाओं में जल बहने लगा। खड़ी लकीरों में झरने बहने लगे।

भगवान उस सुंदर और मनमोहक दृश्य को देखकर अति प्रसन्न हो उठे। उनका मन हुआ, वहीं जाकर रहें। भगवान ने पहले वाली गेंद को धरती कहकर पुकारा। उसे कालांतर में पृथ्वी आदि नामों से भी पुकारा गया। दूसरी गेंद को सूरज और तीसरी गेंद को चन्द्रमा कहा गया। सूर्य और चन्द्र धरती के पहरेदार बने। आधा-आधा समय दोनों को पहरा देने का आदेश भगवान ने दिया। उस आधे-आधे समय को भगवानजी ने दिन और रात कहा। भगवानजी ने उन दोनों मोतियों में प्राणों का संचार किया। दाहिनी आँख वाला मोती पुरुष और बायीं आँख वाला मोती स्त्री बना। उन्हीं आदि पुरुष-स्त्री के संयोग से मानव सृष्टि का विस्तार हुआ।

ऐसी क्रीड़ा भगवानजी ने रचाई। खेल के इतिहास में भगवान का यह खेल प्रथम कहा जाएगा। खेल-खेलने से जब भगवानजी को नवस्फूर्ति प्राप्त हुई, तब मानव को तो अवश्य ही होगी। मनुष्य ही क्यों, पशु-पक्षी भी क्रीड़ा करने में आनंद का अनुभव करते हैं। चिड़ियों का प्रभात में कलरव करना। मयूरी का नृत्यरत होना। श्वान आदि का परस्पर युद्ध जैसा प्रदर्शन करना, एक प्रकार का कीड़ा करना ही तो है।

खेल का अर्थ होता है- सहज होने का प्रयास । ऊर्जा प्राप्त करने का उपक्रम। खेल, लोक में सरलता का पर्याय बन गया। इसकी पुष्टि में मुझे बालकवि बैरागी के गीत की पंक्तियाँ याद आ रही हैं-

खेल-खेल में माता के सब बंधन मैंने तोड़ दिए।
मेरे हौसलों ने आलस के भारी पंख मरोड़ दिए।
सच कहता हूँ इन हाथों से बीसों पर्वत फोड़ दिए।

भारतमाता के गुलामी के बंधनों को तोड़कर मुक्त कराने के कठोरतम संघर्ष को कवि ने 'खेल' कहकर खेल का महत्त्व प्रतिपादित कर दिया है। खेल से संघर्ष क्षमता, हौसला, उत्साह, उमंग, ऊर्जा और तन-मन में स्फूर्ति का संचार हो जाता है। इतनी हिम्मत और शक्ति प्राप्त हो जाती है कि आलस्य का प्रभाव समाप्त होकर पर्वतों जैसे कठोर और कठिन कार्य भी सहज लगने लगते हैं। जीवन के संघर्षों से जूझने की क्षमता प्राप्त हो जाती है।

आज हमारे बच्चों के जीवन से खेल छूट रहे हैं। उनका बचपन खेल से वंचित होता जा रहा है। आधुनिक शिक्षा के व्यस्ततम गृहकार्यों ने उससे खेलने का समय छीन लिया है। पढ़ाई के समयचक्र में खेल का एक पीरियड दर्शाया तो जाता है। वह सबसे आखिरी पीरियड होता है, अर्थात् शिक्षक को एक घंटा पहले छुट्टी की वार्षिक व्यवस्था। शिक्षा के नये प्रयोगों में खेल आधारित प्राथमिक स्तर की शिक्षा में कुछ खेल सम्मिलित किए गए हैं, किन्तु वे भी केवल समय सारिणी तक ही सीमित रह पाते हैं। बढ़ती आबादी की भवन निर्माण शिल्प विद्या में बहुमंजिलें भवनों के तंग घरों में से आँगन नदारद हो गए हैं। जहाँ बच्चे या महिलाएँ थोड़ा समय निकाल कर गपिया लें। सोलहसार जैसे या दूसरे मन बहलाव के खेल-खेल सकें । बालिकाएँ रस्सी कूद का अभ्यास कर सकें।

खेलों की जब बात करते हैं, तब अनेक खेल हमारे मानस पटल पर उभरने लगते हैं। प्रमुख रूप से हम पारंपरिक भारतीय खेलों को मुख्यत: दो वर्गों में बाँट सकते हैं- शारीरिक व्यायाम वाले खेल और मानसिक व्यायाम वाले खेल। इसी प्रकार लड़कों द्वारा खेले जाने वाले खेल तथा लड़कियों द्वारा खेले जाने वाले खेल। अधिकतर खेल तो लड़के और लड़कियों द्वारा समान रूप से खेले जाते हैं ।

खेल केवल मनोरंजन या समय बिताने के लिए ही नहीं खेले जाते, अपितु उनसे शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा भी प्राप्त होती है। खेलों की परिगणना करें, तब सबसे पहले हमारे सामने कबड्डी का खेल आता है। पुराकाल में बैलों, श्वानों, कबूतरों और मुर्गों का मल्लयुद्ध भी मनोरंजन का माध्यम रहा है। इसे नृशंस खेल मानकर इसे बंद करने के प्रयास समय-समय पर होते रहे हैं ।

खेल मानव जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। बच्चे अपने खेलों के माध्यम से भावी जीवन की शिक्षा एवं प्रशिक्षा प्राप्त करते हैं। एक समय था जब गली-मोहल्लों में एक मीठी आवाज गूंजती थी- 'खिलौने वाला।' एक लम्बा बाँस! बाँस पर रंग-बिरंगी चक्रियाँ, मिट्ठू, बाँसुरियाँ और कई सुंदर खिलौने बच्चों को लुभाते थे। बालिकाओं द्वारा भाँति-भाँति की गुड़ियाँ बनाना, उन्हें अपनी सहेली बनाना। उनका विवाह रचाना। एक आनंद का विषय था। स्थानीय लोक कलाकारों द्वारा मिट्टी के खिलौने, हत्थ चक्की, मिट्ठू, हाथी, घोड़ा, राजा, मंत्री, गुड़िया, रानी और कई खिलौने बनते थे। जिन्हें रंग-बिरंगे बनाकर गली-मोहल्ले में वह बेचने आते थे, वह लोक परम्परा क्षीण सी हो रही है। खेल और खिलौने दोनों लुप्त हो रहे हैं। बचपन से उमंग और उल्लास भी लुप्त हो रहे हैं। यह अत्यंत चिंता का विषय है। मनोवैज्ञानिकों और विशेषकर बाल मनोवैज्ञानिकों को इस पर गम्भीरता से विचार करना होगा।

(1) कोड़ा मार :

बात तत्परता और सावधानी की करें, तो हमारे यहाँ यह खेल बहुत लोकप्रिय रहा है। इसे मैदान में गोल घेरे में खेला जाता है। खिलाड़ी एक घेरे में बैठ जाते हैं। पीछे देखना मना होता है। एक खिलाड़ी सावधानी से कोड़ा किसी खिलाड़ी के पीठ पीछे डाल जाता है और उसी गति से दौड़ता रहता है। यदि बैठे खिलाड़ी को पता न चले, तब धावक खिलाड़ी कोड़ा उठाकर उसे कोड़े से मार लगाता हुआ चक्राकार घुमाता हुआ उसे पूर्व स्थान तक लाता है। अगली बार भी कोड़ा उसी के पास रहता है। पकड़ा जाने पर बैठा खिलाड़ी उसके पीछे मारता हुआ दौड़ता है। तब कोड़ा उसके पास आ जाता है। इस खेल को बालक बालिकाएँ दोनों खेलते हैं।

(2) सत्तौलिया :

यह गेंद से खेला जाने वाला खेल है। बहुधा मटके की ठीकरियों को गोल पहियों की तरह घिसकर एक इंच सर्कल के सात पहिए बनाए जाते हैं। उन्हें एक पर एक जमा कर एक खिलाड़ी लगभग आठ-दस फुट दूरी से छोटी गेंद (कपड़े की बनी) से निशाना लगाकर सतौलिये को गिरा देता है। दूसरे खिलाड़ी गेंद को पकड़ने दौड़ते हैं। इस बीच निशानेबाज खिलाड़ी को वे सातों पहिये जमाकर सतौलिया तैयार करना होता है। तैयार होते ही वह चिल्लाकर कह उठता है- 'सित्तौलिया।' यह उसकी जीत का घोष होता है। यदि सतौलिया बनाने से पहले किसी खिलाड़ी ने गेंद उठाकर उसे दे मारी, तो वह हारा हुआ माना जाएगा। यह खेल तत्परता, फुर्ती और निशानेबाजी का करामाती खेल है।

(3) बिल्ली-चूहा पकड़ :

इस खेल को भी घेरे में ही खेला जाता है। बालक-बालिकाएँ हाथ पकड़कर गोल घेरा बनाते हैं। एक खिलाड़ी चूहा बनता है। वह घेरे के भीतर रहता है। दूसरा खिलाड़ी बिल्ली बनता है, वह घेरे के बाहर रहता है। घेरे वाले खिलाड़ी बिल्ली को भीतर नहीं आने देते और भीतर आ जाए तो बाहर नहीं निकलने देते। वह घेरा तोड़कर या दुबक कर भीतर घुस जाता है, तब चूहा निकल आता है। चूहे को रोक-टोक नहीं होती। इस होड़ा-होड़ में जब चूहा पकड़ा जाता है, तब बिल्ली वाला खिलाड़ी चूहे का स्थान ले लेता है। घेरे वाले खेलों में यह सर्वाधिक भागमभाग और होड़ा-होड़ी का खेल है।

(4) अखाड़ा :

अखाड़ों में लट्ठ-तलवार, गदा इत्यादि का अभ्यास करवाया जाता है। इस अभ्यास का प्रदर्शन धार्मिक जुलूसों में अथवा मेलों में

अखाड़ा

खूब होता है। यह प्रदर्शन आज भी लोकप्रिय है। पहले इसका उद्देश्य युद्ध अभ्यास था। आज मात्र मनोरंजन प्रदर्शन है।

(5) गुल्ली डंडा :

भारतीय खेलों में गुल्ली डंडे का खेल बहुत प्राचीन एवं लोकप्रिय है। वैसे तो इसे वर्ष भर खेला जाता है, किन्तु मकर संक्रांति पर विशेष रूप से खेला जाता है। इसकी खेल प्रक्रिया

गुल्ली डंडा

सर्वविदित है। इसमें शारीरिक क्षमता, विशेषकर भुजबल एवं निशाना साधने की क्षमता-सावधानी एवं दक्षता का महत्त्व होता है। इसे खेलने के लिए बड़ा मैदान चाहिए।

(6) कलाम-डाली :

यह खेल वृक्षों पर चढ़कर दाम देने का होता है। टोली के शेष खिलाड़ी वृक्ष पर चढ़ जाते हैं। दाम देने वाला वृक्ष की डालियों पर

कलाम-डाली

बैठे साथियों को पकड़ने के लिए उन्हें डालियों पर घेरता है। एक डाली से दूसरी डाली पर बंदरों की तरह कूद-फाँद होती है। वह जिसे पकड़ लेता है, उस पर दाम चढ़ जाता है। यह खेल जहाँ खिलाड़ियों में वृक्षों पर चढ़ने, उतरने, लटकने, कूदने की क्षमता उत्पन्न करता है, वहीं खतरे भी बनाए रखता है। आजकल इसका चलन कम हो गया है।

- क्रमश :

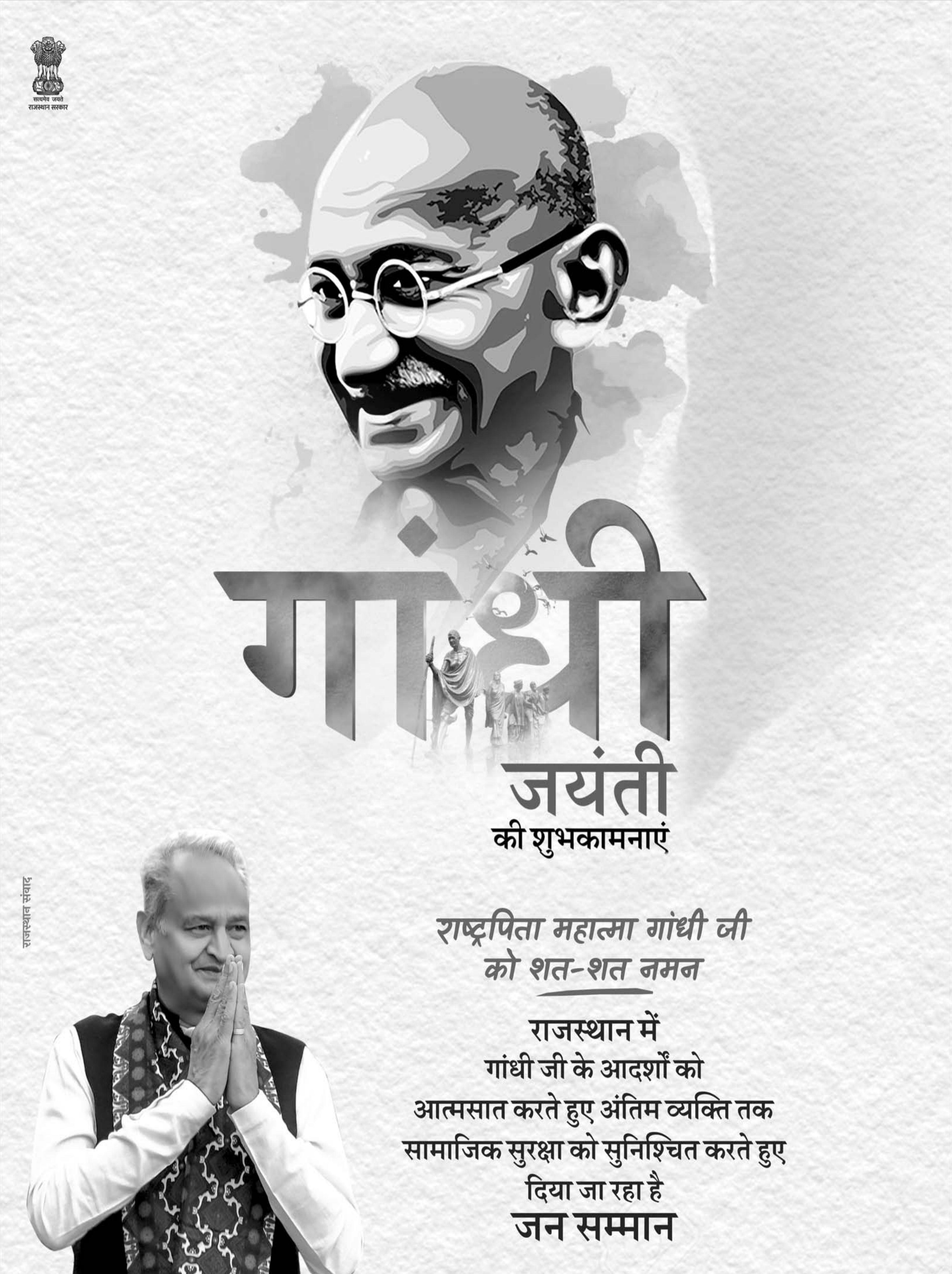

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक डॉ. तुक्तक भानावत द्वारा 352, कृष्णपुरा, सेंटपॉल स्कूल के पास, उदयपुर - 313001 (राज.) से प्रकाशित एवं मुद्रक लोकेश कुमार आचार्य द्वारा मैसर्स पुकार प्रिंटिंग प्रेस 311-ए, चित्रकूट नगर, भुवाणा, उदयपुर (राज.) से मुद्रित। सम्पादक : रंजना भानावत। फोन : 0294-2429291, मोबाइल - 9414165391, Email : shabdranjanudr@gmail.com, drtuktakbhanawat@gmail.com, सर्व विवादों का न्याय क्षेत्र उदयपुर होगा।